chapter - 8

अध्याय 8

जनसंचार माध्यमों में हिन्दी का विकास

- भारत में पत्रकारिता – एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
- हिन्दी पत्रिकारिता की विकास यात्रा
- भारतेन्दु–हिन्दी पत्रकारिता के स्तम्भ
- भारतेन्दु युग की अन्य प्रमुख पत्रिकाएं
- स्वतंत्रता आन्दोलन में हिन्दी पत्रकारिता की भूमिका
- स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी पत्रकारिता
- इन्टरनेट पर हिन्दी पत्रकारिता
- प्रसार माध्यमों में हिन्दी
- हिन्दी के प्रसार में दूरदर्शन की भूमिका

अध्याय 8

जन संचार - माध्यमों में हिन्दी का विकास

भारत में पत्रकारिता – एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

साहित्य की भांति पत्रकारिता भी समाज की विभिन्न गतिविधियों का दर्पण है। सम-सामयिक घटनाचक्र का शीघ्रता में लिखा गया इतिहास 'पत्रकारिता' कहा जाता है। पत्रकारिता का प्रारम्भ मानव की जिज्ञासा प्रवृत्ति के कारण हुआ। यह मानव जाति का मूलभूत गुण है कि वह न सिर्फ अपने आसपास के परिवेश से परिचित होना चाहता है वरना दुनियां के दूसरे देशों में क्या घटित हो रहा-यह भी जानना चाहता है। समस्त संसार के दैनन्दिन घटनाक्रम से मनुष्य को यथाशीघ्र परिचित कराने के प्रयासों की होड़ में पत्रकारिता अपने विविध रूपों में विकसित होने लगी। आज पत्रकारिता लोकशिक्षण, लोकजागृति का सशक्त माध्यम है। पत्रकारिता का उद्देश्य जनता को केवल राजनैतिक घटनाओं से अवगत कराना ही नहीं वरन् पत्रकारिता का मुख्य लक्ष्य सोई हुई शक्ति को जगाना, सामाजिक जीवन की यथार्थ शक्ति को उभारना, व्यक्तियों की जिज्ञासाओं का शमन करना और आनन्द, संतोष मनः प्रसादन का कार्य करना है। आज पत्रकारिता का क्षेत्र इतना प्रभावशाली हो गया है कि उसे 'फोर्थ स्टेट' (चौथी सत्ता) के नाम से पुकारा जाता है। अर्थात् राष्ट्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए जिस प्रकार विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका आवश्यक है उसी प्रकार पत्रकारिता राष्ट्र के सम्बल का चौथा स्तम्भ माना गया है।

कुछ सौ वर्षों पूर्व तक आधुनिक समाचार पत्रों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। प्रारम्भ में विचार-विनिमय के रूप में पारम्परिक कार्यालय तथा पत्र-व्यवहार ही मुख्यतः प्रचलित थे। जब राज्य को जनता के लिए कोई सन्देश प्रसारित करना होता या कोई घोषणा करानी होती तो डुगडुगी बजाकर या शिलालेखों द्वारा इस कार्य को पूरा किया जाता था। रोम साम्राज्य में 'संवाद लेखकों' की व्यवस्था के प्रमाण मिलते हैं। ईसा से 56 वर्ष पहले रोम के बादशाह जूलियस सीजर रोज जनता की जानकारी के लिए सरकारी हुक्मनामों को लिखवाकर टंगवा दिया करते थे। भारत में पत्रकारिता के प्रारंभिक स्वरूप को हम पौराणिक काल में देख सकते हैं। महर्षि नारद, जो एक बात को दूसरी जगह पहुँचाने की कला में माहिर थे, को 'आदि पत्रकार' माना जा सकता है। प्राचीन भारत में तत्कालीन हिन्दू शासकों द्वारा स्थापित गुप्तचर व्यवस्था भी काफी सुदृढ़ और सशक्त थी। देश के बाहर नियुक्त व्यक्ति आधुनिक राजदूतों एवम् कूटनीतिज्ञों की तरह कार्य करते थे। ये अपने कार्य संचालन के लिए गुप्त व्यक्तियों को नियुक्ति करते थे जिनकी सहायता से वे विविध प्रकार की सूचनाएं संकलित करते थे। ऐसे व्यक्तियों को पत्रकारों का पूर्वज भी कहा जा सकता है।

इसी प्रकार पशु-पक्षियों तथा अन्य विविध माध्यमों द्वारा संदेशों व समाचारों के प्रेषण के प्राचीन तौर तरीके भारतीय साहित्य में उपलब्ध हैं। दमयंती का सन्देश ले जाने वाला सुनहरा हंस था, मैनाएं थीं। कमल और भोज पत्रों पर शकुन्तला अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट करती थी। युद्ध और शान्ति दोनों के दौरान सैकड़ों हरकारे पैदल अथवा ऊँट, घोड़ों पर चिट्ठियां पहुँचाते थे। सम्राट चन्द्रगुप्त, पठान शासक अलाउद्दीन खिलजी, शेरसाह सूरी व सम्राट अकबर के पास घोड़ों और हरकारों की बड़ी तेज और कुशल व्यवस्था थी। अशोक कालीन भारत में राज़कार्य के संचालन के लिए उपयोगी सूचनाएं विभिन्न स्रोतों से प्राप्त करने की विशेष व्यवस्था थी। मुगलों के भारत में आगमन के साथ ही संवाद क्षेत्र में नए परिवर्तन दिखने लगे थे। मुगलकाल के संवाद लेखकों को वाकिया नवीस कहा जाता था जो समाचार पुस्तिकाओं में समाचार

लिखते थे। ये समाचार पुस्तिकाएं सरकार के सभी केन्द्रों पर उपलब्ध रहती थी। इस विभाग के मुखिया को 'वकिया निगार' कहा जाता था। इस संदर्भ में बर्नियर ने अपनी पुस्तक 'Travels in Mogal Empire' में लिखा है - 'बादशाह हर जिले में वाकया नवीस नियुक्त करते थे जो महत्वपूर्ण घटनाओं की रिपोर्ट सांडनी सवारों, काफिलों अथवा हरकारों की मार्फत भिजवाते थे। इन रिपोर्टों के आधार पर राज्य के निर्णय लिए जाते थे।' अकबर के काल में समाचार संकलन तथा प्रेषित करने वाले को खबर नवीस या वाकया नवीस कहा जाता था। ये समाचार प्रायः पत्र के रूप में अथवा डायरियों (रोजनामचे) के रूप में होते थे। मुगलकालीन भारत में दैनिक समाचार बुलेटिन निकाले जाने के प्रमाण भी मिले हैं जो लंदन की रूपल एशियाटिक सोसायटी में संग्रहीत हैं। डॉ. सुशील अग्रवाल के अनुसार औरंगजेब ने समाचार पत्रों को काफी स्वतंत्रता प्रदान की। लेखन की स्वतंत्रता का निर्णय तत्कालीन समय में प्रचलित इस धारणा से कर सकते हैं कि एशिया के शासक शक्तिशाली अकबर की अपेक्षा अबुल फज़ल की कलम से अधिक भयभीत रहते थे।[1]

मुगलकाल में यह निश्चित नियम था कि वाकिया नवीस अथवा राज्य के गुप्त समाचार लेखक सप्ताह में एक बार घटित होने वाली घटनाओं को वाकिया अथवा गजट में लिखें। यह गजट महत्वपूर्ण घटनाओं का दस्तावेज होता था जिन्हें प्रायः बादशाह की उपस्थिति में महल की महिलाओं द्वारा रात्रि में लगभग 1 बजे पढ़कर सुनाया जाता था जिससे उसे यह जानकारी मिल सके कि राज्य में क्या हो रहा है।

ब्रिटिश शासनकाल के दौरान पराधीन भारत में पत्रकारिता, पत्रकार और सत्ता का जो संघर्ष चला, उसका प्रारम्भ पत्रकारिता के जन्म के साथ ही हो गया था। यद्यपि, भारत में आधुनिक अर्थों में जिसे हम पत्रकारिता कहते हैं, को प्रारम्भ करने का श्रेय अंग्रेजों को ही है, तथापि विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की मांग करने वाले न्याय के पक्षधर सजातीय पत्रकारों को भी उन्होंने हतोत्साहित किया, भारतीय

1. Press, public opinion and Govt. of India, P.22

पत्रकारों की वैचारिक स्वतंत्रता को स्वीकारना तो उन्हें कतई गंवारा नहीं थी। विचार अभिव्यक्ति की मांग करने पर पहला शिकार विलियम बोल्ट्स हुआ और उन्हें देश से निर्वासित कर दिया गया। भारत में मुद्रण व्यवसाय को प्रोत्साहन देने के लिए बोल्ट्स ने काफी प्रयास किए थे। मस्तिष्क और आत्मा की स्वाधीनता के नाम पर जेम्स हिक्की द्वारा 29 जनवरी 1780 को बंगला गजट नामक साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ किया गया। वस्तुतः इसी दिन से भारत में पत्रिका का विधिवत् प्रारम्भ माना जाता है। अपने पत्र के सन्दर्भ में हिक्की ने पहले अंक में ही स्पष्ट कर दिया था कि यह पत्र राजनीतिक और आर्थिक विषयों का साप्ताहिक है और इसका सम्बन्ध हर दल से है, मगर यह किसी दल के प्रभाव में नहीं आएगा। इस पत्र ने कम्पनी में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध जमकर लिखा। कहा जाता है कि गवर्नर जनरल काउंसिल का एक सदस्य हेस्टिंग्स का विरोधी था जिसके कारण उसने हेस्टिंग्स के खिलाफ हिक्की को कुछ निन्दाजनक सूचनाएं प्रेषित कीं। इन सूचनाओं को अपने पत्र में छापकर हिक्की ने वारेन हेस्टिंग्स को काफी परेशान किया। हेस्टिंग्स की कटु आलोचना का पुरस्कार हिक्की को जेल-यातना के रूप में मिला। 'मार्च 1782 में पत्र प्रकाशन के लिए काम में आने वाले टाइप को जब्त कर लिया गया और 'बंगला गजट' का प्रकाशन बन्द हो गया।[1] अल्पकाल तक जीवित इस पत्र ने दमन के विरुद्ध संघर्ष का जो साहस दिखाया वह आने वाले काल में पत्रकारिता जगत के लिए आदर्श बन गया। हिक्की की परंपरा को समृद्ध करने वाला विदेशी पत्रकार विलियम डुआनी था। 1785 में प्रकाशित 'बंगला जनरल' सरकार का पक्षसमर्थक पत्र था किन्तु 1791 में डुआनी के सम्पादक बनने से इसका स्वर बदल गया। उसने 'इण्डिया वर्ल्ड' नाम का स्वयं का स्वतंत्र पत्र निकाला। डुआनी की आक्रामक मुद्रा और तथ्यान्वेषी दृष्टि से आतंकित होकर सरकार ने उसे भारत से निष्कासित कर दिया। 'इस प्रकार हिक्की ने जो ज्ञान-ज्योति प्रज्ज्वलित की थी वह आंधी पानी की परवा किए बिना जगमगाती रही।'

1. Sharad Karkhanis - Indian politics & the Role of the Press

भारत में प्रेस व छापाखाना और समाचार पत्र गैर सरकारी अंग्रेजों के उद्योग से ही स्थापित हुए थे। उन्होंने समाचार पत्रों का संचालन और सम्पादन ही नहीं किया था, स्वेच्छाचारी शासकों से समाचार पत्र की स्वतंत्रता का संग्राम भी चलाया था। अन्य संग्रामों के समान इस संग्राम में भी कभी हार कभी जीत होती रही। शासकों के पक्ष में पशुबल था और सम्पादकों का सम्बल नैतिक बल और अन्त में 'धिम् बलं' 'क्षत्रियबलम् ब्रह्मतेजो बलम्महल्' सिद्धान्त की विजय हुई और भारतीय समाचार पत्र उत्तरोत्तर स्वतंत्र होता गया।[1]

भारतीय पत्रकारों के प्रेरक और पत्रकारिता के आदि प्रवर्तक के रूप में राजाराम मोहनदास को सदा स्मरण किया जाएगा। राजा साहब के मित्र ताराचन्द दत्त और भवानीचरण बनर्जी के सम्पादन में प्रथम देशी पत्र बांगला भाषा में सन् 1820 ई. में 'संवाद कौमुदी' नाम से प्रकाशित हुआ। अंग्रेज सरकार की दमनकारी नीतियों की राजाराम मोहनराय विभिन्न मुद्राओं में आलोचना कर रहे थे, जबकि देशी पत्रों को सरकारी प्रतिबंध कठोर अनुशासन में रखना चाहते थे। अंग्रेजों के इसी दमनकारी नियंत्रण के फलस्वरूप राजाजी को अपना फारसी पत्र 'मीरात-उल-अखबार' बन्द कर देना पड़ा। इस प्रकार भारतीय पत्रकारिता को अपनी यात्रा के आदि चरण से ही सरकारी अंकुश से जूझना पड़ा। प्रतिकूलता से आहत होकर विभिन्न पत्रों की यात्रा बीच-बीच में अवरुद्ध और स्थगित होती रही है किन्तु आदि पत्रकारों की निष्ठा इतनी दृढ़ थी कि मुद्रा बदल-बदल कर विभिन्न पत्रों के माध्यम से वे अपनी वास्तविक भूमिका में क्रियाशील रहे।

यद्यपि बंगला आधुनिक शिक्षा और पत्रकारिता के क्षेत्र में अग्रणी था किन्तु भारतीय पत्रकारिता के आदिकाल में बम्बई और मद्रास से कई पत्र प्रकाशित हुए जैसे, 'मैड्रास कूरियर', 'मैड्रास गजेट', 'बाम्बे हेराल्ड', 'बाम्बे कूरियर', 'बाम्बे गजेट'। ये अंग्रेजी भाषा के पत्र थे और सम्पादक मुख्यतः अंग्रेज थे। देशी भाषा का

1. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी : समाचार पत्रों का इतिहास पृ. 27

पहला मासिक पत्र 'दिग्दर्शन' जो बांग्ला में था सन् 1818 में प्रकाशित हुआ था। इसके आठ वर्ष बाद हिन्दी का पहला पत्र 'उदन्त मार्तन्ड' 30 मई 1826 को कलकत्ता से पं. युगल किशोर शुक्ल के प्रयास से प्रकाशित हुआ। जिन प्रतिकूल परिस्थितियों के चलते राजाराम मोहनराय को अपना पत्र 'मीरात-उल-अखबार' बन्द करना पड़ा था उन्हीं विघ्नों के कारण पं. युगल किशोर को 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन 4 दिसम्बर 1827 को बन्द करना पड़ा।

हिन्दी पत्रकारिता की विकास-यात्रा

यह ऐतिहासिक संयोग था कि हिन्दी पत्रकारिता की यात्रा बंगाल से शुरू हुई। दरअसल नौकरी-धंधे के उद्देश्य से 14वीं शताब्दी में पश्चिमोत्तर प्रदेश से बहुत से हिन्दीभाषी कलकत्ता आ गए थे। उनमें से कुछ ने अंग्रेजी शिक्षा से अपने को सम्पन्न कर लिया था और आधुनिकता की रोशनी को धीरे-धीरे ग्रहण कर रहे थे। इसके साथ ही उनके मन में हिन्दी समाज को नई रोशनी से जोड़ने की महत्वाकांक्षा भी जन्म ले रही थी। इसी महत्वाकांक्षा का परिणाम था हिन्दी के प्रथम (साप्ताहिक) पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन। पं. युगल किशोर शुक्ल ने 'उदन्त मार्तण्ड' की पहली सम्पादकीय टिप्पणी में अपना उद्देश्य प्रकट किया था कि 'हिन्दुस्तानियों के हित के हेतु इस पत्र का प्रकाशन हुआ है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पुराने पत्रकारों को विपरीत परिस्थितियों से कठोर लड़ाई लड़नी पड़ी, गहरी यातना झेलनी पड़ी। निजी सुख सुविधा को ताक पर रखकर उन महान् पत्रकारों ने पत्रकार का सही और गुरुता दायित्व पूरा किया।

हिन्दी का प्रथम दैनिक पत्र 'समाचार सुधावर्षण' 1854 में जून में कलकत्ता से ही श्यामसुन्दर सेन नामक बंगाली सज्जन के सम्पादन में निकला था। यह एक द्विभाषी (बंगला और हिन्दी) पत्र था। चार भाषाओं में निकलने वाले राजा राम मोहनराय का पत्र 'बंगदूत' 10 मई 1829 को प्रकाशित हुआ था। हिन्दी पत्रकारिता के आरंभिक चरण को लक्ष्य कर हिन्दी के विशिष्ट पं. विष्णुदत्त शुक्ल ने कलकत्ता की विशिष्टता

को रेखांकित करते हुए टिप्पणी की थी - 'कलकत्ता में हिन्दी के सम्बन्ध में जब इतना काम हो चुका था, तब तक दूसरे स्थान पर हिन्दी का एक भी समाचार पत्र प्रकाशित नहीं हो सका था। कलकत्ता के लिए यह गौरव की बात है कि हिन्दी जिस प्रांत की प्रधान भाषा है, उस प्रांत में भी जब हिन्दी के समाचार-पत्र प्रकाशित नहीं हुए थे, तब उसने एक नहीं अनेक समाचार पत्र निकाले।

हिन्दी भाषी क्षेत्र का पहला हिन्दी पत्र 'बनारस अखबार' है जो सन् 1845 में बनारस से प्रकाशित हुआ था। 'बनारस अखबार' हिन्दी का पत्र होते हुए भी उर्दू के रंग में डूबा हुआ रहता था। 1846 में कलकत्ता से पांच भाषाओं में प्रकाशित 'मार्तण्ड' पत्र में हिन्दी को स्थान मिला था। इसी वर्ष 'ज्ञानदीप' नामक पत्र प्रकाशित हुआ। इन्दौर से 'मालवा अखबार' 1848 में प्रकाशित हुआ था। द्विभाषी (हिन्दी-उर्दू) पत्र होते हुए भी इसमें उर्दू को प्रधानता दी जाती थी। 1850 में बनारस से 'सुधाकर' नामक द्विभाषी (बंगला-हिन्दी) पत्र प्रकाशित हुआ। आगरा से 1852 में मुंशी सदासुखलाल के सम्पादन में 'बुद्धि प्रकाश' का प्रकाशन हुआ था। 1853 में ग्वालियर से 'ग्वालियर गजेट' प्रकाशित हुआ। इसमें भी उर्दू की ही प्रधानता थी यद्यपि यह द्विभाषी (हिन्दी-उर्दू) पत्र था। 1855 में 'प्रजा हितैषी' के प्रकाशन की जानकारी भी मिलती है।

हिन्दी में अभी समाचार पत्रों के स्वागत की भूमि तैयार नहीं हुई थी, इसलिए पत्रों के उद्यमियों को हर-कदम पर प्रतिकूलता से जूझना पड़ता था। फिर भी उनकी निष्ठा अडिग रही। साधनों की कमी उन्हें साधना से विरत नहीं कर सकी। आर्थिक कठिनाइयों के कारण पं. युगलकिशोर शुक्ल ने यद्यपि 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन बन्द कर दिया था किन्तु उनकी निष्ठा नहीं टूटी और 1850 में 'सामदण्ड मार्तण्ड' नामक नया पत्र प्रकाशित किया। इससे पता लगता है कि पुराने पत्रकारों में विपरीत परिस्थितियों से लड़ने का कितना अदम्य साहस था। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की असफलता के कारण हमारा राष्ट्रीय उत्साह कुछ समय के लिए ठंडा पड़ गया था।

1857 का परवर्तीकाल हिन्दी पत्रकारिता का दूसरा चरण कहलाता है। 23 मार्च 1874 को 'कविवचन सुधा' में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक प्रतिज्ञापत्र प्रकाशित किया था जो हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से स्वदेशी चेतना का पहला शंखनाद था। 'हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा नहीं पहिनेंगे। हिन्दुस्तान का ही बना कपड़ा पहिनेंगे ' इस प्रकार से भारतेन्दु बाबू देश की अस्मिता जगाने में क्रियाशील थे। भारत की श्रीहीन दशा से व्यथित होकर भारतेन्दु ने लिखा था -

'अब जहुँ देखहूँ तहँ दुःखहि दुःख दिखाई।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।

देश को इस दुर्दशा से मुक्त कराने को हिन्दी पत्रकार व्रतबद्ध थे। सन् 1857 के बाद उन्नीसवीं शती के अन्त तक अनेक महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, हिन्दोस्थान, भारत-मित्र, सारसुधानिधि, उचित वक्ता, बिहार बन्धु, श्री बेंकटेश्वर समाचार आदि की विशिष्ट भूमिका है। इन पत्रों का विशेष झुकाव सामाजिक और राजनीतिक विषयों की ओर था। इस काल-खण्ड के दौरान प्रकाशित होने वाले पत्रों में भारत-मित्र (1878), सारसुधानिधि (1879) और उचित वक्ता (1880) अपनी राजनीतिक तेजस्विता के लिए हिन्दी जगत में विशेष स्थान रखते हैं। इन पत्रों का समाज पर प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि देश-दशा और सरकारी रीति-नीति के बारे में अधिक से अधिक जानने की उत्सुकता लोगों में उत्पन्न हो गई थी। पत्रों की ओर लोगों का झुकाव धीरे-धीरे बढ़ रहा था। सरकारी दमन नीति के बावजूद इन पत्रों में उग्र राष्ट्रीयता की झलक मिलती है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-हिन्दी पत्रकारिता के स्तम्भ

हिन्दी पत्रकारिता की इतिहास यात्रा में भारतेन्दु का उदय एक क्रांतिकारी घटना है। साहित्य की अन्यान्य विधाओं की भांति हिन्दी पत्रकारिता को भी नई दिशा भारतेन्दु ने प्रदान की। इस काल में प्रकाशित होने वाली प्रायः सभी पत्रिकाओं से

भारतेन्दु किसी न किसी प्रकार से सम्बद्ध अवश्य थे। रामरतन भटनागर के शब्दों में - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य के ही जन्मदाता नहीं हैं, वह हिन्दी पत्र सम्पादन कला के भी जन्मदाता हैं। भारतेन्दु के समय देश में नवीन सामाजिक चेतना का उदय होना प्रारम्भ हो गया था। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित समाचारों तथा लेखों पर जन-सामान्य अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगा तथा उनमें व्यक्त विचारों से उद्वेलित भी होने लगा। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में - 'युग की प्रतिभा जनता के निकट अनेक रूप में प्रकट हुई। नाटक, सभा, संस्थाओं में, भाषणों, पत्र-पत्रिकाओं में लेखों आदि के द्वारा लेखक जनता तक अपना संदेश पहुँचा सके।' इन सबमें पत्र-पत्रिकाएं ही अधिक स्थायी और दूर-दूर तक पहुँचने वाला साधन थीं।

15 अगस्त 1868 में काशी से 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन कर भारतेन्दु ने पत्रकारिता के क्षेत्र में नया मार्ग प्रशस्त किया। इससे पूर्व हिन्दी में जितने भी पत्र निकलते थे उनकी कोई निश्चित शैली नहीं थी।[1] प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों के प्रकाशन से लेकर हिन्दी काव्य परंपरा का पाठकों को रसास्वादन कराने वाली यह पत्रिका शीघ्र ही मासिक से पाक्षिक और फिर साप्ताहिक हो गई और अब इसमें राजनैतिक-सामाजिक और स्वाधीन चेतना से ओतप्रोत मूल्यों से संबंधित लेखादि तथा समाचार प्रकाशित होने लगे। किन्तु शीघ्र ही यह पत्रिका स्वभाषा तथा जातीय अभिमान के कारण सरकारी कोप का शिकार हो गई और आगे चलकर भारतेन्दु इससे अलग रह गए। हिन्दी भाषा के रूप को स्थिर और परिमार्जित करने तथा देश में जागरण और सुधार तथा राष्ट्रीय भावनाओं के प्रचार-प्रसार में इस पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान रहा।[2]

15 अक्टूबर 1873 को भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। जून 1874 में इसका नाम बदलकर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' कर दिया गया।

---

1. पं. बालकृष्ण भट्ट-डॉ. राजेन्द्र शर्मा पृ. 143
2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : श्री ब्रजरत्नदास पृ. 191

हरिश्चन्द्र चन्द्रिका की भाषा में एक विशेष निखार और लालित्य के दर्शन होते हैं। इसकी परिमार्जित और प्रभावी भाषा व शैली को देखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा था, 'हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले-पहल इसी चन्द्रिका से प्रकट हुआ। जिस प्यारी हिन्दी को देश ने अपनी विभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कंठापूर्वक अपनाया उसका दर्शन इसी पत्रिका में हुआ। भारतेन्दु ने नई सुधारी हुई हिन्दी का उदय इसी समय से माना है।'[1] 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत पत्रिका थी। हास्य और व्यंग्य शैली में इस पत्रिका के सम्पादकीय लेखों ने तत्कालीन शासन व्यवस्था की विसंगतियों पर जोरदार व्यंग्य किए। इस पत्रिका में भारतेन्दु की पत्रकारिता पर टिप्पणी करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं, 'साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से भारतेन्दु ने राष्ट्रीय सम्मान की भावना जागृत की, साहित्यिक रुचि का संवर्द्धन किया और हिन्दी भाषा को देश के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में ऊँचा स्थान दिलाने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया।[2]

भारतेन्दु ने अपने समय में अनेक हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1876 में उन्हीं के सहयोग से बा. बालेश्वर प्रसाद ने काशी से एक साप्ताहिक पत्रिका 'काशी पत्रिका' का प्रकाशन किया। अधिकांश लेखक पत्रकारों ने भारतेन्दु की पत्रिकाओं के माध्यम से ही लिखना शुरु किया था। 'हिन्दी प्रदीप', 'भारत-जीवन', 'आर्य मित्र', 'भारत-मित्र', 'मित्र विलास' आदि कई पत्रों के प्रकाशन की मूल प्रेरणा भारतेन्दु ही थे।

भारतेन्दु युग की अन्य प्रमुख पत्रिकाएँ

'हिन्दी प्रदीप' : सन् 1877 में प्रकाशित 'हिन्दी प्रदीप' पं. बालकृष्ण भट्ट की सम्पादकीय प्रतिभा का अनुपम उदाहरण है। साहित्यिक पत्रिका के रूप में प्रारम्भ यह पत्रिका शीघ्र ही राजनैतिक साहित्यिक पत्रिका के रूप में परिवर्तित हो गई।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 456
2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : पत्रकारिता और निबन्धकला पृ. 104

लगभग 33 वर्ष तक लगातार प्रकाशित इस पत्र ने अंग्रेज सरकार की नीतियों का जमकर विरोध किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में यह उस काल का सर्वश्रेष्ठ पत्र था। सरकार ने इस पत्र की कथित भड़काने वाली उग्र विचारधारा पर अंकुश लगाने के भरसक प्रयास किए। अन्ततः पत्र का प्रकाशन सदा के लिए बन्द कर देना पड़ा। 'हिन्दी प्रदीप' में साहित्य के साथ राष्ट्रीयता का स्वर कुछ अधिक तीखा था। शायद इसीलिए डॉ. रामरतन भटनागर ने बालकृष्ण भट्ट को राष्ट्रवादी हिन्दी पत्रकारिता का जनक कहा है।[1] 'हिन्दी प्रदीप' विशेषतः तिलक की उग्र राष्ट्रीयता से प्रभावित था।

'ब्राह्मण' : सन् 1883 में कानपुर से प्रकाशित प्रतापनारायण मिश्र का पत्र ब्राह्मण भी 'हिन्दी प्रदीप' की परम्पराओं का निर्वाह करता रहा और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करने की प्रेरणा भारतीय जन-चेतना को देता रहा। हास्य के साथ स्वाधीन चेतना फैलाने में यह पत्र सबसे आगे था। सम्पाद के व्यक्तित्व की छाप जैसी ब्राह्मण पत्र पर थी, वैसी और किसी पर नहीं।[2] आर्थिक कठिनाइयों से जूझते हुए भी 'ब्राह्मण' ने कभी समझौते नहीं किए। विकट आर्थिक स्थिति के प्रति मिश्रजी की चिन्ता इस दोहे में प्रकट होती है - आठ मास बीते जजमान। अब तो करौ दच्छिना दान।

'हिन्दुस्तान' : सन् 1885 में हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' का प्रकाशन राजा रामपाल सिंह द्वारा किया गया। इसे हिन्दी क्षेत्र से प्रकाशित होने वाले प्रथम हिन्दी दैनिक होने का गौरव प्राप्त है। पं. मदन मोहन मालवीय इसके सम्पादक थे। इस पत्र ने पत्रकारिता जगत् में नए प्रतिमान स्थापित किए वहीं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को भी गतिशील बनाया। कांग्रेस की विचारधारा का समर्थन करते हुए हिन्दी भाषा तथा देवनागरी के प्रचार एवम् विकास के लिए इसने उल्लेखनीय कार्य किए।

---

1. The Rise & Growth of Hindi Journalism. Page-480
2. भारतेन्दु युग और हिन्दी का विकास-डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.-27

इस पत्र के माध्यम से मालवीय जी सदा राष्ट्र के पारस्परिक नैतिक सांस्कृतिक मूल्यों के संवर्धन के प्रति विशेष सचेत रहे। हालांकि आलोचकों ने 'समाचार सुधावर्षण' को हिन्दी के प्रथम दैनिक पत्र के रूप में स्वीकारा है किन्तु सुधावर्षण हिन्दी बंगलाभाषा का द्विभाषी पत्र था। अतः शुद्ध हिन्दी भाषा की दृष्टि से यदि मूल्यांकन किया जाए तो 'हिन्दुस्तान' ही हिन्दी का पहला समाचार-पत्र सिद्ध होता है।

'भारत-मित्र' : भारत मित्र का पाक्षिक प्रकाशन सन् 1878 में छोटूलाल मिश्र के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ। पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र इसकी प्रबन्ध व्यवस्था देखते थे। बाद में यह पत्र साप्ताहिक हो गया। इस पत्र के मुख पृष्ठ पर प्रकाशित आदर्श वाक्य था-'ज्योस्तु सत्यनिष्ठानां देषां सर्व मनोरथाः' बाद में उसके उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन हो गए और संस्कृत की इस उक्ति का स्थान इस दोहे ने ले ली :

'सगुण खनिज विचित्र अति खोले सबके चित्र
शोधे नर चरित्र यह भारत मित्र पवित्र।'

भारतेन्दु युग के इस प्रतिनिधि पत्र में सामायिक घटनाओं के समाचारों से लेकर साहित्यिक-सांस्कृतिक सामग्री भी प्रकाशित होती थी। हिन्दी के प्रचार के लिए भी इसने आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस हिन्दी आन्दोलन से अनेक व्यक्तियों की हिन्दी के प्रति अभिरुचि जागृति हुई। भारतेन्दु के निधन पर इसमें काफी लेख प्रकाशित हुए। 'भारत मित्र' ने आम जनता की कठिनाइयों को दूर करने के लिए भी आन्दोलन शुरु किए। छोटूलाल मिश्र के बाद पं. हरमुकुन्द शास्त्री, पं. जगन्नाथ चतुर्वेदी, अमृतलाल चक्रवर्ती, राधाकृष्ण चतुर्वेदी, दुर्गाप्रसाद मिश्र, पं. रुद्रदत्त शर्मा, बालमुकुन्द गुप्त, पं. अमृतलाल शर्मा, शिव नारायण सिंह, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, बाबूराव विष्णु पराड़कर तथा पं. लक्ष्मीनारायण गर्दे जैसे वरिष्ठ सम्पादकों की सर्जनात्मक प्रतिभा के कारण 'भारत-मित्र' सतत् विकास की ओर बढ़ता रहा। श्री बालमुकुन्द गुप्त लगभग आठ वर्ष तक इस पत्र के सम्पादक से जुड़े रहे। इस अवधि में पत्र ने अपनी जीवन्त चेतना की अभिव्यक्ति के साथ समुचित विकास किया।

हिन्दी भाषा के परिष्कार और परिमार्जन के क्षेत्र में 'भारत-मित्र' ने अपने उदारवादी और प्रगतिशील दृष्टि के कारण उल्लेखनीय सफलताएं प्राप्त की। 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिस हिन्दी आन्दोलन का सूत्रपात किया था, वह राष्ट्रीय और जनतांत्रिक था। बालमुकुन्द गुप्त ने साहित्य में जिस धारा का विकास किया उसमें महत्व राजाओं और नवाबों का नहीं था, महत्व था देश की साधारण जनता का।'[1] सन् 1899 से 18 सितम्बर 1907 को अपने निधन के पूर्व तक गुप्त जी पूरी आस्था और समर्पण भाव से इस पत्र से जुड़े रहे। इस दौरान साहित्य के सृजन तथा समाज के उद्धार की दिशा में 'भारत मित्र' ने महत्वपूर्ण सफलताएं अर्जित कीं। 'जनजीवन के साथ सम्पर्क बनाए रखने के उद्देश्य से गुप्त जी ने त्यौहारों, पर्वों तथा विशेष अवसरों पर विशेषांक प्रकाशित करने की परम्परा को जन्म दिया। दशहरा, होली और वसन्त के अवसर पर 'भारत-मित्र' टेसू, होली और बसन्त की कविताओं तथा चुटकलों से परिपूर्ण विशेषांक के रूप में निकलता था। ....गुप्तजी ने ऐसे पत्र-सम्पादकों की आलोचना भी की जो देश के समाचारों को पत्रों में स्थान न देते थे।'[2] गुप्तजी के अनुसार 'भारत के समाचार पत्र भारत ही में निकलते हैं और इस देश की बातों से इतने शून्य होते हैं कि उन्हें भारत का पत्र कहने में भी लाज आती है।' इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राजनैतिक, सामाजिक तथा व्यापार नीति विषयक चेतना जागृत करने तथा हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के उद्देश्यों को लेकर प्रारम्भ किया गया 'भारत-मित्र' अपने उद्देश्यों में पूर्ण सफल रहा।

'सारसुधानिधि' : इस साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन सन् 1879 में कलकत्ता से पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र द्वारा प्रारम्भ किया गया। जन्म में ही आर्थिक संकटों का सामना करने वाला यह पत्र अपने समय के तेजस्वी पत्रों में से एक था। गम्भीर संस्कृतानिष्ठ भाषा में प्रकाशित इसके लेखों में स्वाधीनता का प्रबल स्वर निहित रहता था। जिन

1. शैलीकार बुलमुकुन्द गुप्त (हिन्दी साहित्य की बंगीय भूमिका): डॉ. रामविलास शर्मा, पृष्ठ 64
2. डॉ. नत्थन सिंह ने भारत मित्र और गुप्त जी का मूल्यांकन करते हुए

दिनों 'भारत मित्र' की सम्पादकीय नीति नरम थी और वह अपने पांव जमाने की कोशिश कर रहा था, उन दिनों ही पं. सदानन्द मिश्र ने बरतानिया हुकूमत पर खुलकर प्रहार कियाथा, समाज संगठन का शंख फूंका था और हिन्दी के साहित्य और भाषा को अमूल्य दिशा प्रदान की थी। इसमें तत्कालीन लोकजीवन और देश-दशा का बड़ा यथार्थ चित्र है। इसकी सम्पादकीय नीति शुद्ध राष्ट्रीय थी और सारे हिन्दी प्रदेश में इसका आदर था। इसमें प्रकट प्रखर राष्ट्रीयता के स्वर के कारण ही यह भारतेन्दु बाबू का अत्यन्त प्रिय पत्र था।

'उचित वक्ता' : पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र ने इस पत्र के माध्यम से जनचेतना को जागृत करने का बीड़ा उठाया। अपने नाम के अनुरूप यह पत्र सही बात कहने में कभी नहीं हिचकिचाया। 'प्रायः दो वर्षों से उन्हें (दुर्गाप्रसाद मिश्र को) लिखने पढ़ने और पत्र-सम्पादन का अच्छा अनुभव हो गया था। इसलिए 'उचित वक्ता' तेजस्वी पत्र सिद्ध हुआ। इसमें लिखने पढ़ने में कोई मिश्रजी का हाथ पकड़ने वाला न था इसलिए ये पूर्ण स्वतंत्रता से लिखते थे।[1] इस प्रकार निर्भीक हृदय से निकला हर शब्द ब्रिटिश सरकार के खिलाफ तीर का काम करने लगा। उनके तेजस्वी पत्रों ने लोगों में शक्ति और स्फूर्ति का संचार किया। डोगरी, बंगला, हिन्दी, संस्कृत आदि भाषाओं के विद्वान दुर्गाप्रसाद मिश्र ने अपनी सरल, सहज और सुबोध भाषा के बल पर युगीन पत्रकारों को योग्यनेतृत्व प्रदान किया। भाषा की शुद्धता पर वे विशेष ध्यान देते थे।

'हिन्दी बंगवासी' : एक बंगाली सज्जन पं. अमृतलाल चक्रवर्ती ने हिन्दी बंगवासी का प्रारम्भ सन् 1890 में शुरु किया। 1893 में बालमुकन्द गुप्त इस पत्र से सहायक सम्पादक के रूप में जुड़े। 'हिन्दी बंगवासी' को 'भाषा गढ़ने की टकसाल' कहा जाता था। उस टकसाल का कोई सिक्का श्री गुप्त जी की छाप के बिना नहीं निकलता था। गुप्तजी ने छह वर्ष के अपने कार्यकाल में इस पत्र के माध्यम से न सिर्फ हिन्दी पत्रकारिता का दिशा-निर्देश किया वरन् हिन्दी भाषा को भी परिमार्जित किया। 'इसी पत्र के

1. समाचार पत्रों का इतिहास - अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी पृष्ठ 172

माध्यम से उन्होंने हिन्दी भाषा के रूप की स्थापना की तथा नवीन शब्द और उनके प्रयोगों को जन्म तथा स्थायित्व प्रदान किया था।'[1] डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र के शब्दों में, 'अपने युग का यह चर्चित पत्र था जिससे हिन्दी समाज के एक विशेष प्रयोजन की पूर्ति हुई। इतना ही नहीं कलकत्ता के अनेक तेजस्वी पत्रकारों को लेखनी मांजने का इसने अवसर दिया था। यह भी इसका एक ऐतिहासिक अवदान है।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु युगीन पत्र और पत्रकार जीवन्त भारतीय चेतना के प्रति पूर्ण रूप से सजग रहे। उन्होंने राष्ट्रीय गौरवपूर्ण परम्पराओं के प्रति अपनी आस्था एवम् विश्वास व्यक्त किया। ब्रिटिश सरकार की खुलकर निर्भीक आलोचना इसकी पत्रकारिता की खासियत रही। भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता में स्वदेशी भाव, स्वाधीनता की प्राप्ति की ललक, समाज सुधार का उत्साह, नारी जाति के विकास, हिन्दी भाषा व साहित्य का संवर्द्धन, हास्य व्यंग्यपूर्ण शैली आदि प्रवृत्तियां मुख्यतः दिखाई देती है।

स्वतंत्रता आंदोलन में हिन्दी पत्रकारिता की भूमिका

भारत में अपनी शक्ति एवम् सत्ता को कायम रखने के लिए सभी प्रकार के हथकण्डे ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाए गए। भारतीयों को हतोत्साहित करने की तथा राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रहार करने की दृष्टि से जुलाई 1905 में बंगाल विभाजन की घोषणा कर दी गई। भारतीय पत्र-पत्रिकाओं ने बंग-भंग का कड़ा विरोध करते हुए इसे राष्ट्रीय हितों पर कुठाराघात बताया। 'युगान्तर' ने जहाँ पूर्ण स्वतंत्रता का नारा दिया वहीं महर्षि अरविन्द ने अपने पत्र 'वन्देमातरम्' में ब्रिटिश सरकार को यह बता दिया कि भारत भारतीयों के लिए है। इसी प्रकार 'संध्या' ने भी यह स्पष्ट घोषणा कर दी कि हम पूर्ण स्वतंत्रता चाहते हैं। स्वदेशी बहिष्कार आदि हमारे लिए अर्थहीन है, यदि ये पूर्ण स्वतंत्रता की स्थापना के साधन नहीं बनते। इस प्रकार इस काल की पत्र-पत्रिकाएं शब्दों के माध्यम से मानों आग उगल रही थीं। इस युग की पत्रकारिता ने

---

1. गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त : जीवन और साहित्य - डॉ. नत्थनसिंह पृ. 126

स्वतंत्रता आंदोलन को 'धर्मयुद्ध' की संज्ञा देकर जन-सहयोग का आह्वान किया।

'देवनागर (1907), नृसिंह (1907), कलकत्ता समाचार (1914), 'विश्वामित्र' (1916), स्वतंत्र (1920) आदि पत्रों ने खुलेआम बगावत विद्रोह का प्रचार किया। अंग्रेजी शासन को चुनौती दी, पराधीनता को धिक्कारा, अंग्रेजी को तजकर हिन्दी अपनाने का शंख फूंका। शारदाचरण मिश्र, यशोदानन्दन अखौरी, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, अमृतलाल चक्रवर्ती तथा मूलचन्द अग्रवाल जैसे सम्पादकों-प्रकाशकों ने सच्ची मिशनरी भावना का परिचय देते हुए घोर आर्थिक कष्टों के बावजूद हिन्दी पत्रकारिता का पथ आलोकित किया। मिश्रजी ने देवनागरी लिपि को सारे भारत की लिपि बनाने के महान् विचार और आन्दोलन का सूत्रपात किया, तो वाजपेयी जी ने अखबारों की स्वतंत्रता का दमन करने वाले कानूनों की कड़ी भर्त्सना की। मूलचन्द अग्रवाल ने न केवल एक उच्च स्तरीय दैनिक पत्र ही हिन्दी जगत को दिया बल्कि अपने उग्र विचारों के कारण जेल की यात्रा भी की। इस कालम के अधिकांश पत्र भारत की आजादी के संघर्ष के प्रति समर्पित थे।

इस युग के प्रमुख पत्रों में 'केसरी' और 'मराठा' थे। इन पत्रों के माध्यम से लोकमान्य तिलक ने अपनी निर्भीक लेखनी और वाणी से समाज की जड़ता को तोड़ा और स्वराज्य प्राप्ति की तीव्र ललक को जन-जन के हृदय में प्रज्वलित किया। तिलक ने जोरदार शब्दों में अभिव्यक्ति की आजादी की मांग की। राष्ट्रीय जन-जागरण को व्यापकता देने के लिए केसरी का हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित किया जाने लगा। हिन्दी केसरी का प्रकाशन सन् 1903 में डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे ने नागपुर से प्रारम्भ किया। 'केसरी' में तिलक के प्रकाशित लेखों के हिन्दी अनुवाद 'हिन्दी केसरी' से प्रकाशित होते रहे। हिन्दी जगत् में इस पत्र का स्वागत किया गया और शीघ्र ही यह पत्र लोकप्रिय हो गया। केसरी के मुखपृष्ठ पर यह काव्य प्रकाशित होना था-

'सावधान ! निश्चिंत होकर न विचरना, जब देश की जनता नींद से उठ जाएगी तब तुम्हारी खैर नहीं।' सरकार की दमनकारी कार्यवाहियों के बिरुद्ध 'हिन्दी केसरी'

ने प्रखर आवाज उठाई। 'हिन्दी केसरी' पर टिप्पणी करते हुए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा था,' .....आशा है इससे कहीं काम होगा जो तिलक महाशय के 'केसरी' से हो रहा है। इसके निकालने का पूरा श्रेय पं. माधवराव सप्रे को है। महाराष्ट्री होकर हिन्दी भाषा पर आपके अखण्ड और अकृत्रिम प्रेम को देखकर उन लोगों को को लज्जित होना चाहिए जिनकी जन्म भाषा हिन्दी है, पर जो हिन्दी में एक अक्षर लिख नहीं सकते अथवा लिखना नहीं चाहते।'

'नृसिंह' : सन् 1907 में श्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी के प्रकाशन-सम्पादन में निकला पत्र 'नृसिंह' भी 'केसरी' जैसा ही तेजस्वी पत्र था। 'नृसिंह' ने तिलक के विचारों का पूर्ण समर्थन किया। 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है' की भावना के प्रचार-प्रसार में अपनी पूरी शक्ति लगा दी। उसने देश के लोगों में आत्मसम्मान की भी प्रेरणा दी-'आओ समस्त देशवासियो, हम लोग उपनिवेश और उसके पिट्ठू इंगलैंड की वस्तुओं का बहिष्कार करें जिससे उन्हें जान पड़े कि हिन्दुस्तानी नरे मुर्दे नहीं है। हम लोग दिखा दें कि हम आत्माभिमानी हैं और तुम्हें तुम्हारे पाप कर्मों का फल चखाने को बद्ध परिकर हैं।' वाजपेयी जी सही अर्थों में क्रांतिकारी तथा ओजपूर्ण विचारों के स्वाभिमानी प्रतीक थे जो राष्ट्रहित तथा गौरव के उत्थान के लिए सतत् समर्पित रहे।

'स्वराज्य' : 'स्वराज्य' साप्ताहिक इलाहाबाद से 1907 ई. में शुरु हुआ जिसके संस्थापक संपादक शांतिनारायण भटनागर थे। अपनी उग्रवादी विचारधारा के कारण यह पत्र सरकारी कोप का भाजन बना। शहीद खुदीराम बोस पर एक कविता प्रकाशित करने के 'अपराध' में श्री शांतिनारायण को साढ़े तीन वर्ष की कैद तथा एक हजार रुपये जुर्माने की सजा भुगतनी पड़ी। उसके बाद जिन भी सम्पादकों ने 'स्वराज्य' के सम्पादक का पद सम्भाला, वे सभी उग्र एवम् क्रांतिकारी लेखों, कविताओं आदि के प्रकाशन के कारण गिरफ्तार किए गए। स्वतंत्रता की तुमुल घोषणा करने वाले इस पत्र ने सम्पादक के लिए एक विज्ञापन इस प्रकार निकाला - 'चाहिए स्वराज्य के लिए एक

सम्पादक। वेतन दो सूखी रोटियां, एक ग्लास ठण्डा पानी और हर सम्पादकीय के लिए दस साल की जेल।' स्पष्ट है कि राम्पादक का कार्य कितना जोखिम भरा था। स्वाधीन संग्राम का पथ कांटों से भरा था, किन्तु आजादी के इन सेनानियों ने राह की हर कठिनाई को झेला।'स्वराज्य' का तो दावा था -

लाख बांधो तुम हमें जंजीर से,
वक्त पर निकलेंगे फिर भी तीर से।

'अम्युदय' : राजनीतिक चेतना के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान देने वाले 'अम्युदय' साप्ताहिक के सम्पादक पं. मदन मोहन मालवीय थे। निर्भीकता, राष्ट्रोत्थान, सहिष्णुता, सद्भावना, समाचार पत्रों की स्वतंत्रता तथा सामाजिक सुधार 'अभ्युदय' की नीति के मूल आधार थे। सरदार भगतसिंह की फांसी के बाद 'फांसी अंक' निकालकर इस पत्र ने बड़े साहस का परिचय दिया। श्री पुरुषोत्तम दास टंडन और पं. कृष्णकांत मालवीय भी इस पत्र से संबद्ध रहे।

'कर्मयोगी' : सन् 1909 में 'कर्मयोगी' का प्रकाशन शुरु हुआ जो मात्र नौ माह ही जीवित रहा किन्तु इतने कम समय में भी उसने अपना विशेष स्थान बना लिया। पं. सुन्दरलाल द्वारा सम्पादित यह साप्ताहिक पत्र अति उग्र और क्रान्तिकारी विचारों का समर्थक था। ब्रिटिश सरकार और अफसरों की दृष्टि में 'कर्मयोगी' पढ़ना 'अपराध' था। अनेक पाठकों को अपनी नौकरी से हाथ भी धोना पड़ा। उन्ही व्यक्तियों में एक थे 'प्रताप' के जन्मदाता और सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी। 'कर्मयोगी' की भाषा और शैली आगे चलकर 'प्रताप' का आदर्श बनी।

'प्रताप' : श्री गणेश शंकर विद्यार्थी के सम्पादन में 'प्रताप' का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना है। उनमें प्रबल आत्मविश्वास तथा अनवरत कार्य करने की अपूर्व क्षमता थी। अग्रलेखों में वे आत्मा ही उंड़ेलकर रख देते थे। प्रताप और जन आन्दोलन पर्याय बन गए थे। 'प्रताप' ने चिट्ठियों के माध्यम से समाचार और शिकायत छापने की परिपाटी का श्री गणेश किया। प्रत्येक वर्ष दशहरे पर 'प्रताप' ने राष्ट्रीय अंक

निकालकर विशेषांक की परंपरा डाली। आरम्भ से ही ब्रिटिश सरकार ने 'प्रताप' को कुचक्रों और षड़यन्त्रों में फंसाने के अनेक प्रयास किए किन्तु उसके सम्मुख 'प्रताप' ने कभी समर्पण नहीं किया। किसानों के पक्ष में लिखने के कारण एक बार 'प्रताप' पर मुकदमा चला और विद्यार्थी को कारावास की सजा भी दी गई। उन्होंने विदेशी सरकार से क्षमा नहीं मांगी और जेल जाने को तैयार हो गए।

'स्वदेश' : स्वदेशी आन्दोलन का पक्षधर 'स्वदेश' साप्ताहिक का प्रकाशन 1919 में गोरखपुर से हुआ। इस पत्र को भी सरकारी कोप तथा दमन का समाना करना पड़ा। किन्तु इसके सम्पादक जो इसके संस्थापक भी थे, पं. दशरथ प्रसाद द्विवेदी इसे सन् 1939 तक प्रकाशित करते रहे। इस पत्र का लक्ष्य था-

'स्वर्गालय के लिए आत्मबलि हम न करेंगे।
जिस 'स्वदेश' में जिए उसी पर सदा मरेंगे॥'

स्वाधीनता आन्दोलन को सम्पूर्ण उत्तरप्रदेश अंचल में प्रसारित करने की दिशा में 'स्वदेश' का विशेष योगदान रहा है। श्री द्विवेदी को राष्ट्रीय विचारों के कारण जेल यात्राएं करनी पड़ी। सन् 1924 में पं. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' द्वारा सम्पादित 'स्वदेश' का दशहरा अंक विस्फोटक आग्नेय अस्त्रों से भरा था जिसके प्रकाशन के बाद अंग्रेजी सरकार ने सरस्वती प्रेस, जहाँ यह अंक छपा था, को नष्ट करने का प्रयास किया। इस पत्र की लोकप्रियता इतनी व्यापक थी कि विदेशों में रह रहे भारतीय भी इसे पढ़ने के लिए मंगाया करते थे। स्वदेश का मूल सिद्धान्त सभी अंकों के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित किया जाता रहा -

'जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं॥'

'आज' : बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने स्वदेश-प्रेम और हिन्दी निष्ठा के कारण श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन सितम्बर 1920 को 'आज' का प्रकाशन आरम्भ किया। पत्र का उद्देश्य था, 'देश के लिए सर्वप्रकार से स्वातंत्र्य उपार्जन।' 'हम हर बात में स्वतंत्र

होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य है कि हम अपने देश के गौरव को बढ़ाएं, अपने देशवासियों में स्वाभिमान का संचार करें, उनको ऐसा बनावें कि भारतीय होने का उन्हें अभिमान हो, संकोच न हो। यह अभिमान स्वतंत्रता देवी की उपासना करने से मिलता है।' पत्र के प्रथम संपादक बाबू श्रीप्रकाश थे। बाद में इसके सम्पादन का भार बाबूराव विष्णु पराड़कर पर आ पड़ा। पराड़कर जी ने अपने ओजमयी सम्पादकीय लेखों द्वारा क्रान्तिकारियों, राष्ट्रभक्त नेताओं और पत्रकारों का पथ-प्रर्शन किया। उन्होंने 'आज' के माध्यम से महात्मा गांधी के नेतृत्व में चल रहे स्वतंत्रता संगाम आन्दोलन को रचनात्मक स्वरूप प्रदान किया। इस पत्र की तेजस्विता के कारण नमक सत्याग्रह के दौरान 'आज' से एक हजार रु. की जमानत जमा कराने का कहा गया। शिवप्रसाद जी ने जमानत जमा नहीं की अतः इस पत्र को बन्द कर देना पड़ा।

पराड़कर ने अहिन्दी भाषी क्षेत्र के होते हुए भी हिन्दी की महान सेवा की। वे जानते थे हिन्दी ही इस देश की एकता को कायम रखने में महत्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हो सकती है। 'आज के माध्यम से हिन्दी भाषा को उन्होंने अनेक नए शब्द भी प्रदान किए। उस समय कहा भी जाता था कि यदि अंग्रेजी सीखनी हो तो 'लीडर' पढ़ो तथा हिन्दी सीखनी हो तो 'आज' पढ़ो। हिन्दी गद्य विकास तथा उसे शुद्ध एवम् परिपक्व बनाने में उनकी उल्लेखनीय भूमिका रही।

पत्रकार गाँधी

गाँधी जी एक सिद्धस्त पत्रकार थे। उन्होंने पत्रकारिता को वैचारिक क्रांति का एक सशक्त माध्यम स्वीकार किया। स्व. महादेव देसाई, प्यारे लाल तथा डॉ.जे.सी. कुमारप्पा जैसे तत्वदर्शी पत्रकार उनके सहायक थे जो हिन्दी पत्रकारिता में प्राण उंडेलते थे। उन्होंने 7 अप्रैल 1919 को बम्बई से 'सत्याग्रह' नामक साप्ताहिक बिना रजिस्ट्रेशन के ही निकालना प्रारम्भ किया। यह मुख्यतः अंग्रेजी में तथा अंशतः हिन्दी में था। जुलाई 1919 में 'यंग इण्डिया' का गुजराती संस्करण 'नवजीवन' प्रकाशित होना आरम्भ हुआ। शीघ्र ही गांधीजी ने हिन्दी 'नवजीवन' भी प्रारम्भ कर

दिया। आगे चलकर गाँधीजी ने 'यंग इण्डिया', 'नवजीवन' और 'हिन्दी नवजीवन' पत्रों के नाम 'हरिजन' रख दिए। गांधीजी के अछूतोद्धार तथा अस्पृश्यता विरोधी नीति का ही यह परिणाम था। हिन्दी 'हरिजन' के सम्पादन से श्री महादेव भाई देसाई, प्यारेलाल जी, वियोगी हरि, रामनारायण चौधरी, आदि अनेक व्यक्ति सम्बद्ध रहे। गाँधी जी ने 'हरिजन' के माध्यम से हरिजनोद्धार तथा ग्रामीणजन के उत्थान के लिए विशेष प्रयास किए। उनके अनुसार हरिजन एक समाचार पत्र नहीं अपितु आम जनता का विचार पत्र है। सरकार के प्रेस नियन्त्रणों का सामना गांधीजी को भी करना पड़ा। उन्होंने पत्र के प्रकाशन को स्थगित रखना स्वीकार किया किन्तु अपने सिद्धान्तों और नियमों से कभी किसी प्रकार का समझौता नहीं किया।

जहाँ गांधीजी ने पत्रकारिता के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों और दूषित परम्पराओं के खिलाफ आवाज उठाई वहीं भारत माता की परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए देश में चल रहे आन्दोलन को नेतृत्व दिया तथा सत्याग्रह, असहयोग और भारत छोड़ो आन्दोलन को सक्रियता प्राप्त की। अपने पत्रों के द्वारा उन्होंने अपने विचारों को जन समाज तक पहुँचने का भरसक प्रयास किया था। गांधीजी की प्रेरणा से अनेक पत्रों का प्रकाशन हुआ। डॉ. भगवान दास और आचार्य नरेन्द्रदेव के सम्पादकत्व में त्रैमासिक पत्रिका 'विधायी' का प्रकाशन हुआ जिसमें गांधी दर्शन और कांग्रेस विचारधारा सम्बन्धी विचारोत्तेजक सामग्री होती थी। डॉ. संपूर्णानन्द ने 'समाज' और 'मर्यादा', श्री कमलापति त्रिपाठी ने 'संसार', श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति ने 'अर्जुन', जयनारायण व्यास ने 'अखण्ड भारत' के माध्यम से गांधीजी की विचारधारा का प्रचार किया।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी पत्रकारिता

स्वतंत्रता से पूर्व काल के हिन्दी पत्रकारिता के अध्ययन के दौरान हमने देखा कि ऐसे समय में जब सरकार की दमननीति की तलवार सदैव सिर पर लटकती रहती थी, उस समय के पत्रकारों ने किस प्रकार जीवन्त पत्र-पत्रिकाएं निकाली। उन दिनों

पत्रकारिता देश की स्वतंत्रता की लड़ाई का एक हथियार थी जिसके साथ हिन्दी भाषा एवम् साहित्य की वृद्धि और समाज-उत्थान के काम भी अभिन्न रूप से जुड़े थे। उस समय का सम्पादन लेखनी के पैनेपन, उत्कट राष्ट्रभाव तथा देश व समाज की दुरावस्था की व्यापक अनुभूति से प्रेरित था। स्वतंत्रता से पूर्व पत्र-पत्रिकाएं राष्ट्रीय आकांक्षाओं, प्रेरणाओं और अभिनव विचारों से ओत-प्रोत थी। इस प्रयास में उन्होंने हिन्दी भाषा को खूब सजाया संवारा। हिन्दी का कोई आन्दोलन ऐसा नहीं हुआ जिसमें पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका न रही हो। इस युग में पत्रकारों और पत्र-पत्रिकाओं की विश्वसनीयता सर्वाधिक थी। उनका जन-जीवन पर व्यापक प्रभाव था बावजूद इसके कि उन दिनों पत्र-पत्रिकाओं और पाठकों दोनों की संख्या कम थी। माध्यम कितना ही छोटा रहा हो लेकिन पत्रकारों ने शब्द की विद्रोही ज्वलनशीलता को हर अत्याचार के समक्ष जिन्दा रखा।

1947 में देश की स्वतंत्रता से राष्ट्रजीवन में बुनियादी अन्तर आया। स्वाधीन भारत के संविधान में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मौलिक अधिकार बन गई। लोकतंत्र की स्थापना के बाद सरकार की आर्थिक विकास की नीति को सफल बनाने के लिए, जनता को विकास-प्रक्रिया में सहयोगी-साझीदार बनाने हेतु उसी की भाषा में विचार-समाचार पहुँचाने की आवश्यकता उपस्थित हुई। जब इस प्रक्रिया में सरकार पक्षधर हो तो पूंजी का सहयोग मिलना सरल हो गया। अन्य कठिनाइयां भी कम हुईं और पत्र-पत्रिका के प्रकाशन का कार्य बढ़ने का मार्ग प्रशस्त हुआ। स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र निर्माण के महानकार्य को सफल बनाने के लिए जनमत जगाने का सबसे अधिक भार पत्रकारों के कंधों पर आया। इससे पत्र-पत्रिकाओं की संख्या और प्रसार में आशातीत वृद्धि हुई। पूंजी के सहयोग और मुद्रण-प्रौद्योगिकी में आई क्रांति के कारण पूर्ण सज्जायुक्त पत्र-पत्रिकाएं निकलनी शुरू हुईं। नाना विषयों की पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ होने से हिन्दी भाषा की अभिव्यक्ति शक्ति बढ़ी। हिन्दी भाषा में कसाव भी आया है। कम शब्दों में ही अधिक से अधिक अर्थबोध कराने की प्रवृत्ति बढ़ी है। भाषा की

व्यंजनाशक्ति बढ़ी है। सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता तथा बिम्ब-पद्धति अपनाकर गागर में सागर भरने का प्रयास होने लगा है। व्याकरण सम्मत भाषा लिखने की ओर रुझान बढ़ा है और विरामचिन्हों के प्रयोग के प्रति सजगता बढ़ी है।

पिछले चार-पांच दशकों में पत्रकारिता की दुनिया में समाचार, फीचर, सम्पादकीय आदि की भाषा और प्रस्तुतिकरण के बारे में सजगता बढ़ी है। अनेक नए प्रयोग हुए हैं और हो रहे हैं। ऐसा नहीं है कि हिन्दी पत्रकारिता में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'हरिश्चन्द्र पत्रिका' के जमाने से लेकर माखनलाल चतुर्वेदी के 'कर्मवीर' या गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' और विष्णु पराड़कर के 'आज' में नई शैलियों के दर्शन नहीं हुए या शैलीगत प्रयोग नहीं हुए। हुए, किन्तु उन दिनों पत्रकारिता मिशन मानी जाती थी। पेशेवर पत्रकारों का भी मुख्य उद्देश्य स्वाधीनता संग्राम में योगदान देना और जन-चेतना फैलाना था। स्वतंत्रतापूर्व की प्रेरक शक्तियां 1947 आते-आते चुक गई। न वे दिग्गज पत्रकार रहे और न आमतौर से वह उत्साह। अंग्रेजी राज चला गया तो उसी के साथ लगा कि प्रमुख उद्देश्य हासिल हो गया। फलस्वरूप हिन्दी पत्रकारिता में भी चौतरफा ठहराव-सा आ गया। यहाँ तक कि सम्पादकीय लेखकों के तेवर भी ठंडे पड़ गए।

1947 के बाद पत्रकारिता पर व्यावसायिकता हावी हो चली। 1965 में टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन समूह ने श्री सच्चिदानंद वात्स्यायन के संपादन में एक समाचार साप्ताहिक निकाला दिनमान। समाचार साप्ताहिक होने के बावजूद उसने भाषा, समाचारों के चयन, शैली के ही मामले में नहीं बल्कि समाचारों के जीवन को जीवन मूल्यों से जोड़कर देखने की तथा राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक गतिविधियों को लोकतांत्रिक मूल्यों और तर्कसंगत कसौटी पर कसने की परंपरा भी नए सिरे से शुरू की। परिमार्जित भाषा और शैलीगत प्रयोगों के लिए दिनमान आज तक याद किया जाता है। उसने जो पहल की थी उसका विस्तार हुआ है। आज इस क्षेत्र में 'जनसत्ता', 'नवभारत' और 'नवभारत टाइम्स' अग्रणी हैं। व्यावसायिकता का यह तकाजा भी है

कि पत्रकारिता को पत्रकार पेशे के रूप में ग्रहण करें, स्वयं को दूसरों से अच्छा साबित करें और अपने लेखन को प्रामाणिक ही नहीं, रोचक भी बनाएं। आज हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में स्वयं को अच्छे से अच्छा साबित करने की होड़ लगी है। यह होड़ प्रेरणा देती है कि शैली में निखार आए, अभिनव शैलियों का प्रयोग हो और पत्रकारिता का स्तर उठे। इस प्रयास में पत्रकारिता साहित्य से बहुत कुछ ग्रहण कर सकती है और करती भी है लेकिन साहित्य नहीं बन सकती।

पत्रकारिता घटनाओं, घोषणाओं, तथ्यों को लेकर तुरत-फुरत लिखा गया साहित्य है, जिसे सजाने,संवारने के लिए अलग से वक्त नहीं होता। टेलीप्रिंटर पर आई खबरों का संपादन और जोड़-तोड़ करके उन्हें कम्पोजिंग के लिए शीघ्रातिशीघ्र भेजना होता है। इसलिए अखबारों में ठेठ समाचारों में शैली के प्रयोग की वैसी गुंजाइश नहीं होती जो सम्पादकीय, आलेख, फीचर और टिप्पणियों में होती है। फिर भी दैनिकों में ठेठ समाचारों के प्रस्तुतीकरण को रोचक और ग्राह्य बनाने के लिए छोटे और साफ-सुथरे वाक्य रखने की परम्परा शुरू हुई है। इसे अभिनव शैली के अन्तर्गत रखा जा सकता है। सुरुचि पर ज्यादा ध्यान देने वाले और भाषा के प्रति सचेत रहने वाले अखबारों में वाक्य-रचना और शब्दों या पदों के बारे में कुछ नियम होते हैं। खबरीलेपन (न्यूजी) के आग्रह के बावजूद शब्दों के चयन, वाक्यरचना, मुहावरों का प्रयोग आदि के माध्यम से समाचारों में पाठक की दिलचस्पी जगाने की कोशिश की जाती है।सरल वर्णनात्मक शैली समाचारों के अनुकूल रहती है लेकिन भाषा की कसावट, चुस्ती, मुहावरे, संवेदनशीलता एक अखबार को दूसरे से अलग करती है। समाचार की शुरुआत प्रश्न से, नाटकीय ढंग से, उद्धरण से, घटना से या उसके किसी पक्ष से शुरू हो सकती है, लेकिन शैली मूलतः वर्णनात्मक ही रहती है। समाचार-साप्ताहिकों और पाक्षिकों के समाचारों में विश्लेषण, परिप्रेक्ष्य और उक्ति-वैचित्र्य का समावेश करना आवश्यक हो जाता है, अतः उनकी शैली अलग-अलग किस्म की होती है। पहले हम अखबारों से लिए गए उदाहरण देखते हैं फिर पत्रिकाओं के समाचारों से।

नवभारत टाइम्स

८ मुम्बई ७ अप्रैल, १९९९

राजनीतिक अस्थिरता और पार्टियाँ

केन्द्र सरकार द्वारा जयललिता की गैरवाजिब माँगें नामंजूर कर दिए जाने के बाद अन्नाद्रमुक के मंत्रियों का सरकार से हटने का फैसला स्वाभाविक है। अचरज की बात तो यह है कि नाराज जयललिता ने सरकार से समर्थन वापस लेने का फैसला एक झटके में क्यों नहीं लिया। दरअसल, गठबंधन राजनीति के चलते एक सरकार को गिराना तो आसान है, लेकिन उसका विकल्प बनाना कठिन है। शायद जयललिता इसी मानसिक द्वन्द्व में है। १२ अप्रैल को जब जयललिता दिल्ली आएंगी, उसके बाद कभी भी राष्ट्रपति को उनकी पार्टी का समर्थन वापसी पत्र सौंप दिया जाएगा। जाहिर है, १५ अप्रैल से शुरू हो रही लोकसभा की बैठकों में वाजपेयी सरकार को शक्ति परीक्षण के दौर से गुजरना होगा। जयललिता के १८ लोकसभा सदस्यों का समर्थन न मिलने के बाद गठबंधन सरकार अल्पमत में आ जाती है। अल्पमत सरकार भी चल सकती है, बशर्ते विपक्ष विभाजित रहे, जैसा कि नरसिंह राव सरकार के कार्यकाल के आरंभिक वर्षों के दौरान हुआ था। लेकिन इस बार विपक्षी पार्टियों में केन्द्र की वाजपेयी सरकार को गिराने की सामूहिक उत्सुकता देखी जा रही है। वामपंथी पार्टियाँ ही नहीं, बल्कि कांग्रेस, राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चा तथा कम लोकसभा सांसदों वाले कुछ अन्य दल भी सरकार को गिराने के लिए प्रयत्नशील दिख रहे हैं। कांशीराम की बहुजन समाज पार्टी तथा करुणानिधि की द्रविड़ मुनेत्र कषगम से शायद वाजपेयी सरकार कुछ उम्मीद कर सकती है, लेकिन कांशीराम के समर्थन से सरकार चलाना जयललिता के समर्थन से सरकार चलाने से भी कठिन कार्य है। कहने को तो केन्द्रीय मंत्री प्रमोद महाजन कह रहे हैं कि सरकार लोकसभा में अपना बहुमत साबित कर देगी और ऐसा कहते हुए वे बहुत आश्वस्त भी नजर आ रहे हैं, लेकिन चुनावी गणित फिलहाल गठबंधन सरकार के पक्ष में नहीं है और जयललिता के विश्वस्त सांसद सुब्रह्मण्यम स्वामी समता पार्टी, बीजू जनता दल, तृणमूल कांग्रेस तथा अकाली दल के विभाजन पर भी आस लगाए हुए हैं। समता पार्टी, जिसके अध्यक्ष के खिलाफ कार्रवाई की जयललिता की मांग को लेकर मामला इस हद तक पहुँचा है, अंदर ही अंदर बुरी तरह टूटी हुई है। बिहार के इसके ८ विधायकों में नेता तथा उपनेता समेत ४ पार्टी छोड़ चुके हैं और मंत्री नहीं बनाए जाने के कारण १२ में से ८ लोकसभा सदस्य खार खाए बैठे हैं। बीजू जनता दल तो टूटते-टूटते बचा है। अकाली दल में तोहड़ा तथा बादल के बीच घमासान जारी है। तृणमूल कांग्रेस के सांसद मूलतः कांग्रेसी हैं और इधर कुछ उपचुनावों में तृणमूल कांग्रेस की अपेक्षा कांग्रेस के बेहतर प्रदर्शन के कारण वे कांग्रेस की ओर फिर लौट सकते हैं। जाहिर है कि केन्द्र सरकार को सिर्फ जयललिता से ही नहीं, बल्कि अपनी समर्थक चार अन्य पार्टियों की आंतरिक टूट से भी खतरा है। उन खतरों से जूझना केन्द्र सरकार के लिए निश्चय ही मुश्किल काम होगा। यदि सरकार के लिए कोई संतोष की बात है तो वह यही है कि उसके गिरने के बाद फिर विकल्पी सरकार बनेगी, यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो रहा है। कांग्रेस सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी है और इस नाते राष्ट्रपति सबसे पहले सरकार बनाने की संभावनाओं का पता लगाने की जिम्मेदारी भी उसे ही देंगे। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव हरकिशन सिंह सुरजीत तथा जनता दल के नेता देवेगौड़ा पहले ही कांग्रेस को सरकार बनाने की पहल करने को कह चुके हैं, लेकिन कांग्रेस ने अभी तक यह स्पष्ट नहीं किया है कि वाजपेयी सरकार के गिरने के बाद वह सरकार बना ही लेगी और यदि वह सरकार बनाएगी तो सिर्फ अपनी सरकार बनाएगी अथवा गठबंधन सरकार। यानी वाजपेयी सरकार के गिरने की सूरत में वैकल्पिक सरकार का नेता कौन होगा, उस सरकार का स्वरूप क्या होगा, इसके बारे में कुछ पता नहीं है। राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चे ने कह रखा है कि उसकी पहली प्राथमिकता वाजपेयी सरकार को गिराना है और गिरने के बाद ही सरकार बनाने पर विचार किया जा सकता है। इस रुख से लगता है कि वैकल्पिक सरकार बनना आसान काम नहीं है। देश की घरेलू तथा अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों को देखते हुए बिना वैकल्पिक सरकार की तैयारी किए वर्तमान सरकार को गिराने की कोशिश देशहित में उचित नहीं है। इसलिए केन्द्र सरकार को गिराने के लिए प्रयत्नशील पार्टियों की अपनी पहली प्राथमिकता सरकार गिराना नहीं, बल्कि उसका विकल्प तैयार करना होनी चाहिए।

वे क्यों सोचें?

जनसत्ता ८-१-९९

क्रिकेट सभ्य लोगों का खेल है। क्या इसीलिए यह शिवसेना को रास नहीं आता? वह मैदानों को इस लायक नहीं रहने देना चाहती कि वहां क्रिकेट खेली जा सके। कभी उसने मुंबई के वानखेड़े स्टेडियम की पिच खोद डाली थी। इस बात का भी लिहाज नहीं किया था कि यही पिच भारतीय क्रिकेट के कई स्वर्णिम अवसरों और दृश्यों की गवाह रही है। अब उनकी गाज दिल्ली के फिरोजशाह कोटला स्टेडियम पर गिरी है। इस मैदान पर भी भारतीय क्रिकेट के कई ऐतिहासिक लम्हे साकार हुए हैं। लेकिन शिवसेना को उन सबसे मतलब नहीं है। उसे अपनी बेमानी, अतार्किक जिद ही सबसे प्रिय है। यहां पाकिस्तान को नहीं खेलने देना है। वह भारत का दुश्मन है। अगर उसे रोकने का कोई दूसरा तरीका नहीं है तो फिर यही तरीका सही कि मैदान को क्रिकेट खेलने लायक ही न रहने दिया जाए।

लेकिन भारत में तो ढेर सारे शहर हैं, ढेर सारे मैदान हैं। पाकिस्तान के साथ ही जो मुकाबले होने हैं वे कई शहरों में होने हैं। क्या शिवसैनिक सब जगह यही काम करते रहेंगे? यानी जिन मैदानों में खिलाड़ी शालीनता से बल्ला लेकर उतरते हैं वहां उद्दंडता के साथ कुदाल लिए पहुँचेंगे और पिचों को खोद देंगे? लेकिन फिर दूसरे शहरों में मैच रख दिए गए तो? शिवसेना को देश के सारे शहरों के सारे उपलब्ध मैदानों की सारी पिचें खोदनी पड़ेंगी। पिच की जगह भर नहीं, मैदान के उस समूचे हिस्से को खोदना होगा जहां दूसरी पिच का निर्माण संभव है। इस तरह अगर शिवसेना देश में उपलब्ध सारे मैदानों को क्रिकेट की कब्रगाह में बदल सके तो पाकिस्तान को भारत में न खेलने देने का उनका ख्वाब पूरा हो सकता है। लेकिन क्या इसके बाद वह क्रिकेट ही जिंदा रहेगा जिसने फिल्मों के साथ मिलकर मुंबई को वह पहचान दिलाई है जिसे अब बाल ठाकरे मिटाने पर तुले हैं। फिर आने वाली पीढ़ियों के तेंदुलकर कहां पैदा होंगे, कैसे पैदा होंगे, यह बाल ठाकरे से मत पूछिए।

वैसे क्रिकेट की पिचें खोद कर ही शिवसेना का काम नहीं चलेगा। जैसे उन्होंने गुलाम अली का कार्यक्रम रोक दिया, उसी तरह देश में बहुत सारी चीजें रोकनी होंगी जिनका वास्ता किसी रूप में पाकिस्तान से है। उन्हें दूसरे खेलों पर भी प्रतिबंध लगाना होगा, अंतरराष्ट्रीय मुकाबलों में भारतीय टीम को भेजने पर रोक लगानी पड़ेगी, क्योंकि मुमकिन है कि किसी मुकाबले में भारत पाकिस्तान आमने-सामने आ जाएं। खेल के अलावा गीत, नृत्य, संगीत, कला- सबको पूरी ताकत के साथ रोकना होगा क्योंकि ये वे चीजें हैं जो सरहद के पार बड़ी आसानी के साथ चली जाती हैं, न उधर के गुलाम अली रोके रुकते हैं न इधर के दिलीप कुमार रुकते हैं। फैज और फिराक की रचनाओं पर भी नजर रखनी पड़ेगी। मुश्किलें तब तक मुकम्मल नहीं होंगी जब तक उस इतिहास को दफन नहीं किया जाएगा जो बताता है कि दोनों देश एक ही संस्कृति के वारिस हैं, और जब तक राजनीति और अंतरराष्ट्रीय संबंधों में इस बात का खयाल न रखा जाएगा कि किसी भी मंच पर पाकिस्तान के साथ उसका साझा न हो। लेकिन इतना सब करने के बाद क्या अपना देश बचा रहेगा? या जैसा बचा रहेगा वह कैसा होगा? लेकिन यह शिवसेना क्यों सोचे? सोचते वे हैं जो लोकतंत्र में यकीन रखते हैं।

नवभारत मुम्बई

सुभाषित

अच्छा दोस्त खुदा का दिया हुआ बेहतरीन तोहफा है.

–जार्ज बर्नाड शा

नवभारत

धर्मान्तरण पर बहसः कदम पीछे

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कुछ दिनों पूर्व धर्मान्तरण पर राष्ट्रीय बहस छेड़ने की आवश्यकता बताई थी, लेकिन अब उनका कहना है कि वह सुझाव उन्होंने अल्पसंख्यकों में विश्वास पैदा करने के लिये दिया था. सामान्य तौर पर अटल जी अपने सुझावों में इस प्रकार और इतनी जल्दी परिवर्तन नहीं करते हैं, लेकिन इस धर्मान्तरण के मुद्दे पर यह परिवर्तन आश्चर्यजनक है. जहां तक धर्मान्तरण पर 'राष्ट्रीय बहस' के सुझाव का प्रश्न था, उसे सभी दलों ने अमान्य कर दिया था. विरोधी दलों का मानना था कि धर्मान्तरण पर राष्ट्रीय बहस की आवश्यकता उस समय पड़नी चाहिये जब इससे संबंधित कानून में कोई परिवर्तन करना हो और इस सम्बन्ध में मौजूदा कानून में कोई बदलाव लाने की कोई जरूरत नहीं है. मौजूदा कानून के अनुसार जबरन धर्मान्तरण अपराध है, लेकिन स्वेच्छा से किया गया धर्मान्तरण कोई अपराध नहीं है. जिस समय धर्मान्तरण पर कानून बना था उस समय इस विषय पर पर्याप्त बहस हो चुकी थी. उसी बहस की बुनियाद पर हमारे संविधान में देश की जनता को उसके धार्मिक अधिकारों के संदर्भ में कुछ वायदे किये थे, जिसके अनुसार हर व्यक्ति को अपना धर्म चुनने का अधिकार है. इस स्थिति में धर्मान्तरण पर बहस की बात करना संविधान के खिलाफ वादा-खिलाफी है. बहरहाल, धर्मान्तरण पर बहस का मुद्दा उठा गुजरात कांड से. गुजरात के दक्षिणी हिस्सों में कुछ स्थानों पर ईसाइयों के खिलाफ हिन्दू संगठनों ने मुहिम छेड़ दी और उनके पूजा स्थलों को क्षति पहुंचाई. हिन्दू संगठन उस क्षेत्र में हो रहे धर्मान्तरण पर नाराज थे अतः छोटा-सा बहाना मिलते ही वहां हिंसा होने लगी. इस हिंसा को रोकने के लिये गुजरात की भाजपा सरकार ने किंचित ढिलाई से काम लिया, जिसके परिणामस्वरूप हिंसा थमने का नाम नहीं ले रही थी. जहां तक गुजरात के कुछ हिस्सों में हो रहे धर्मान्तरण का प्रश्न है वहां ये हो रहा है, लेकिन कोई नहीं कह सकता कि जबरन धर्मान्तरण हो रहा है. गांवों में गरीबी है, भूख है, बेरोजगारी है. ईसाई मिशनरियों ने उपर्युक्त आपदाओं से जूझ रहे लोगों को बाहर निकालने की कोशिश की. हो सकता है कि आपदाओं से बाहर निकालने के लिये मिशनरी ने धर्मान्तरण की शर्त रखी हो. लेकिन, यदि शर्त स्वेच्छा से स्वीकार की गई हो तो आप क्या कर लेंगे? बेहतर तो यह होता कि जिन हिन्दू संगठनों को इस धर्मान्तरण पर आपत्ति थी, वे उन गरीबों, गांववालों के पास रोटी और काम लेकर पहुंच जाते. फिर कौन ईसाई धर्म स्वीकार करने जाता? लेकिन ऐसा कुछ हुआ नहीं. वास्तव में, किसी रेखा को छोटा दिखाने के लिये उसके बगल में बड़ी रेखा खींचनी ही पड़ती है.

ईश्वर हमें गांधीजी के मार्ग पर चलने के लिये सद्बुद्धि दे

डॉ. [illegible] मेहता

... हुकूमत [illegible] वालों की भाषा ही अलग होती है. वे अपने को न तो हीन मानते हैं और न ही किसी उचित सलाह को स्वीकार करते हैं. बापू ने अपने जीवनकाल के उत्तरार्द्ध में [illegible] के अंतिम वर्ष में [illegible] आरंभ किया [illegible] फल ने उन्हें [illegible] के [illegible] महात्मा की [illegible] विकृत कर दिया [illegible] भारतीय [illegible] के साथी थे, लेकिन उसकी संकुचित विचारधारा के लोग करते थे. जिनसे [illegible] उनके [illegible] से महामानव गांधी को अपने कार्य को अधूरा छोड़कर दुनिया से जाना पड़ा. उनके स्वप्नों का भारत निर्मित नहीं हो सका और आधी सदी बीत गई. इस आधी शताब्दी में देश ने अपने उत्थान व पतन को देखा और महसूस किया. उत्थान भौतिक दृष्टि से हुआ. आधी-अधूरी ही सही [illegible] की आर्थिक क्रांति हुई. आर्थिक क्रांति का लाभ प्रति व्यक्ति आय होती है जो [illegible] बढ़ गई. नैतिक दृष्टि से हमारा पतन उन्नति के मुकाबले में अधिक हुआ. हम दिखावे में अधिक [illegible] हैं. सही बातें स्वीकार कर उन्हें क्रियान्वित करने में कष्ट होता है. [illegible] सुभाषचन्द्र बोस ने गांधी जी को अटल दृढ़ता जो उन्होंने 1942 के आंदोलन में बताई थी, उन्हें राष्ट्रपिता के नाम से संबोधित किया था.

हमें याद आते हैं गांधी जी के वे विचार जो उन्होंने अपने महाप्रयाण के एक दिन पूर्व तथा उसी दिन व्यक्त किये थे- 'जिन लोगों ने आजादी की खातिर घोर परिश्रम किया था और बड़े-बड़े बलिदान दिये थे और जिन पर स्वाधीनता का भार आ गया, वे मद और सत्ता के लोभ में क्यों फंस रहे हैं? यह चीज हमें कहां ले जायेगी? यह कब तक रहेगी? ऐसा करके हम जगत में प्रतिष्ठा कायम रख सकेंगे? मैं कहां खड़ा हूं. इस बेचैनी के बीच अबाधित शांति प्राप्त करने के लिये मुझे क्या करना पड़ेगा?'

महाप्रयाण के 51वें वर्ष में हमें अपने स्वाधीन भारत की विवेचना करते समय लगता है स्वतंत्रता के लिये किया गया घोर परिश्रम और बड़े-बड़े बलिदान बाट जोह रहे हैं कि पद और सत्ता के लोभ से हमारे कर्णधारों को कब मुक्ति मिलेगी? यह लोग हमें भ्रष्टाचार के वीभत्स मकड़जाल में फंसाता जा रहा है. हमें खोजना पड़ रहा है कि अभ्रष्ट कौन है? क्यों है? हमें खोजना पड़ रहा है कि हमारा अपना क्या है? गांधी जी का यह सवाल और जटिल है कि यह स्थिति कब तक रहेगी? वर्ष पर वर्ष [illegible] पचास वर्ष बीत गये और लगता है, पचासों वर्ष और न बीत जावें, क्योंकि हमने स्वदेशीता की दिशा में पहला पग भी नहीं उठाया है, और तो और स्वदेशी की अपनी सुविधानुसार

आज शहीद दिवस

परिभाषा ही बदल दी जा रही है. गांधीजी ने स्वदेशी की परिभाषा की थी, 'स्वदेशी की व्यापक व्याख्या यह है कि विदेशी वस्तुओं को छोड़कर सारी वस्तुएं देश की बनी हुई इस्तेमाल की जाएं. देशी वस्तुओं का उपयोग देश के उद्योगों की रक्षा के लिये जरूरी है. खासतौर पर ग्राम लघु उद्योगों की रक्षा के लिये जिनके बिना भारत दरिद्र हो जायेगा.' हम स्वदेशी की बात करते समय देश के उन उद्योगों की चिंता करते हैं जिन्हें विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उद्योगों [illegible] स्थापना से अनुचित प्रतियोगिता के लिये बाध्य होना है. हमने अपनी अर्थव्यवस्था को [illegible] प्रकार चलाना नहीं सीखा और भिक्षावृत्ति में [illegible] पटु होते चले गये और इस कहावत को चरितार्थ कर रहे हैं- 'जिसने न मानी बड़ों की सीख, उसने खपरा ले मांगी भीख.' एक [illegible] आत्मा से बड़ा कौन हो सकता है. महात्मा को [illegible] अनुभव अपने प्रमाण का हो गया था. [illegible] काठियावाड़ से आये कार्यकर्ताओं ने मुलाकात [illegible] समय मांगा, तो गांधी जी ने जवाब दिया [illegible] प्रार्थना के बाद आ जाएं, मैं जीवित रहा तो उस [illegible] समय मिलूंगा.' जीवन-मृत्यु वैचारिक द्वन्द्व [illegible] रात एक सप्ताह से चल रहा था. उन्होंने अपने [illegible] मालिश करने वाले व्यक्ति से कहा था- [illegible] यदि मैं लंबे समय की बीमारी अथवा फोड़े [illegible] फुंसी से मरूं तो घोषणा करना कि जैसा ईश्वर [illegible] परायण मनुष्य होने का मैं दावा करता था वैसा [illegible] सचमुच मैं था नहीं. अगर तुम ऐसा करोगे तो [illegible] आत्मा को शांति मिलेगी, यह भी याद रखो अगर कोई गोली मारकर मेरे प्राण ले ले, जैसे किसी ने उस दिन बम से मेरे प्राण लेने की कोशिश की थी और मैं कराहे बिना उस गोली का सामना करूं और रामनाम लेते हुये मेरे प्राण निकल जायें, तो ही मेरा दावा सच्चा साबित होगा.' और, गांधी जी का दावा सही साबित हो गया. 30 जनवरी 1948 की शाम 5.10 बजे [illegible] से दस मिनिट देर से गांधी जी प्रार्थना सभा में आये. प्रार्थना के समय प्रार्थना के सिवा और कोई विचार मन में नहीं आना चाहिये. तीन गोलियां चलीं. प्रमाण की मुद्रा में गोली चलाने वाला व्यक्ति था जिसकी बुद्धि जड़-हिन्दुवादी कही जा सकती है. गोली लगने के साथ गांधी लुढ़क गये. उनके मुख से अंतिम शब्द 'राम! राम!' निकले. औपचारिकताएं पूरी हुईं. मुकदमे चले. मृत्युदंड दो को और आजीवन कारावास कुछ को दिये गये. इन सबने अनेक उलझनें हमारे सामने उत्पन्न कर दीं. उस गोली चालन में सम्मिलित पक्ष के लोग अपनी भूल स्वीकार करने में आधी शताब्दी के बाद भी तैयार नहीं. उन्हें स्वीकार नहीं कि वह हत्या थी. वे उसे 'वध' की संज्ञा देते हैं. इससे बड़ी विडम्बना नहीं हो सकती कि अहिंसा और मानव प्रेम का पुजारी वैयक्तिक हिंसा और घृणा का शिकार हो जाए, लेकिन ऐसा हमारे सामने हुआ. काश, महामानव का बलिदान हमारी संकुचित मनोदशाओं को बदलने में सफल होता? आज हम 1948 से कहीं अधिक [illegible] संकुचितता, अनैतिकता आदि सामाजिक वृत्तियों को ढोये चले जा रहे हैं. विचार मंथन [illegible] अंतिम सप्ताह हमें बहुत कुछ दे सकता है. हम यहां कतिपय गांधी चिंतन ले रहे हैं. कुछ लोगों में यह विचार दिखाई देता है कि भारत के [illegible] और राजदूतों को ऐसी शान से रहना चाहिये जो उनसे स्वाधीन दर्जे के योग्य हो और तड़क-भड़क में उन्हें स्वाधीन अमेरिका और [illegible] की बराबरी करना चाहिये. वे समझते हैं कि [illegible] में भारत की शान बनाये रखने के लिये [illegible] खर्च करना जरूरी है. मैं ऐसा नहीं [illegible] स्वाधीनता का वही अर्थ नहीं है जो तड़क-भड़क, शान-शौकत का है. [illegible] पैसा [illegible] चाहिये जितनी लंबी रजाई हो. अपनी दरिद्रता को छिपाना ठीक नहीं. भारत [illegible] संसार में नैतिक श्रेष्ठता पर निर्भर करेगा. उसके पास केवल नैतिक पूंजी है जो खर्च करने [illegible] है. प्रांतों के भाषावार पुनर्विभाजन का प्रश्न है इनमें यह खतरा है कि सत्ता के फल हथियाने के लिये स्थानीय राजनीतिज्ञ इसका दुरुपयोग करेंगे.

मतलबी पार्टियां और उनके सिद्धांतहीन नेता

विनय पाठक

देश को आजाद हुए आज आधी सदी से भी अधिक समय बीत चुका है. इस अवधि में देश को [illegible] विभिन्न दलों और विभिन्न विचारधाराओं से जुड़े प्रधानमंत्रियों को भी देख चुका [illegible] प्रकार अब देश में ऐसी कोई राजनीतिक [illegible] नहीं बची है, जिसका केंद्र में [illegible] ठीक [illegible] वामपंथी [illegible] कभी भी अकेले दम पर केंद्र में [illegible] नहीं बना सके हैं, लेकिन [illegible] भी [illegible] इंकार नहीं किया जा सकता [illegible] कि संयुक्त मोर्चा सरकार में देश की [illegible] वामपंथी पार्टी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी [illegible] शामिल थी; जबकि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (माकपा) सरकार को बाहर से समर्थन दे रही थी. इसी प्रकार संयुक्त मोर्चा सरकार के बाद केंद्र में गठित होने वाली अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार में भी इतने दलों के नुमाइन्दे हैं कि अब सभी विचारधारा और राजनीतिक मानसिकता का केंद्र की सरकार में प्रतिनिधित्व हो गया है. इस तरह अगर देश की जनता यदि आज की तिथि में यह जांचना चाहे कि कौन-सा दल देश के लिए ठीक है तो वह आसानी से कर सकती है, क्योंकि उसने अब सभी दलों को देख लिया है. कौन-सा दल अच्छा है और कौन दल देश की जनता की आकांक्षाओं पर खरा नहीं उतरता. इस बात पर देश की जनता ही विचार कर सकती है, लेकिन यहां कुछ महत्वपूर्ण प्रसंगों को उठाना आवश्यक है ताकि आम लोगों को इस बाबत सोचने में आसानी हो. देश की सत्ता पर कुछ सालों को छोड़कर अधिकांश समय तक काबिज रहने वाली कांग्रेस को ही सबसे पहले देखना उचित होगा, क्योंकि सत्तारूढ़ भारतीय जनता पार्टी और उसकी सहयोगी पार्टियों पर ध्यान देना अभी इसलिए उचित नहीं है, क्योंकि उनका पूरा प्रदर्शन अभी तक देश की जनता के सामने नहीं आ सका है और उन्हें काम करने के लिए अभी कुछ समय और दिया जाना चाहिए. संसद के शीतकालीन सत्र में जो कुछ हुआ, वही कांग्रेस और अन्य विपक्षी दलों के संबंध में सब कुछ कहने के लिए काफी है. कांग्रेस अपने आपको महिला आरक्षण की समर्थक बताती रही है, लेकिन इस सत्र में उसने इस संबंध में लाए जाने वाले विधेयक को लेकर भी लगातार दोहरा रुख अपनाया. संवाददाता सम्मेलन में कांग्रेस के प्रवक्ता लगातार दावा करते रहे कि कांग्रेस पार्टी इस विधेयक के प्रति वचनबद्ध है और यदि सरकार ने इसे सदन में पेश किया तो वह इस दिशा में केंद्र सरकार को पूरी तरह से रचनात्मक सहयोग करेगी. स्वाभाविक था कि कांग्रेस की ओर से जारी होने वाले इस प्रकार के वक्तव्यों से केंद्र सरकार का हौसला लगातार बढ़ता रहा, लेकिन उसकी परेशानी तब बढ़ गयी, जब संसद में पेश किए जाते समय अचानक कांग्रेस ने अपना पाला बदल कर विधेयक के विरोधियों का साथ देना शुरू कर दिया.

कुछ विपक्षी दल इस विधेयक के प्रावधानों में संशोधन करने की मांग कर रहे थे, जबकि लालू प्रसाद यादव तथा मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व वाला लोकतांत्रिक मोर्चा तो महिलाओं को दिए जाने वाले प्रस्तावित आरक्षण के दायरे को 33 प्रतिशत से घटाकर दस प्रतिशत करने की मांग कर रहा था. इसके साथ ही विरोधी दल इस प्रस्तावित विधेयक में अल्पसंख्यक तथा आरक्षण की सुविधा प्राप्त कर रहे वर्गों के लिए भी आरक्षण की मांग कर रहे थे. सैद्धांतिक तौर पर देखें तो उनकी इस मांग में कोई बहुत बड़ी आपत्ति वाली बात नहीं है, लेकिन प्रायोगिक तौर पर ऐसी मांग करने का एकमात्र उद्देश्य किसी भी तरह से इस विधायक को लटकाने का प्रयास ही करना था. यही कारण है कि [illegible] इस विधेयक को संसद में [illegible] किया गया तो महिला [illegible] वाले इन दलों ने सदन में [illegible] खड़ा कर इसे पेश [illegible]

इस सत्र में भी [illegible] प्रयास फिर किया [illegible] लोकसभा में एक बार कांग्रेस की [illegible] ममता बैनर्जी ने काफी [illegible] और समाजवादी पार्टी के एक [illegible] को किसी तरह से अपनी नाक बचानी पड़ी. इतना कुछ हो जाने के बाद भी कांग्रेस की ओर से ऐसी कोई प्रतिक्रिया नहीं आई जिससे कि इस विधेयक के विरोधियों का [illegible] बल्कि उसने इसका मौन समर्थन ही किया. हालांकि कांग्रेस की अध्यक्ष स्वयं महिला हैं. पेटेंट और बीमा विधेयक पर भी कांग्रेस लगातार दोहरा आचरण प्रदर्शित करती रही है.

जनसत्ता

इतना करीब पाकिस्तान

आप पाकिस्तान जाना चाहेंगे? दिल्ली से एक बस शुरू हुई है, चौदह घंटों में आपको पाकिस्तान पहुंचा देगी। एक ट्रेन पहले से ही चल रही है जो शायद पंद्रह घंटे लेती है। इतना करीब है पाकिस्तान। अपने ही देश के कई प्रदेशों से ज्यादा करीब। मगर इतिहास में आए एक भूकम्प ने उसे हमारी चेतना से कितना दूर कर दिया है। चौदह घंटों की इस यात्रा के लिए वीसा चाहिए, जो कि पाकिस्तान जाने वाले बताते हैं बड़ी जेहमत और जिल्लत से मिलता है। उधर से भी आने वालों का यही हाल होता है। महज पचास साल पहले ऐसा नहीं था। इतिहास के लिहाज से पचास साल कुछ नहीं होते, लेकिन अभी वे कितने बड़े पचास साल लगते हैं। इन पचास सालों में नफरत का कितना बड़ा जंगल भारत और पाकिस्तान के बीच उग आया है। हिंद-पाक की सरहदें इस तरह गुत्थमगुत्था हैं कि हम तमाम कोशिशें करके भी दोनों देशों के बीच सरहद बताने वाली बाड़ नहीं लगा पाए, लेकिन आपसी घृणा की एक ऐसी बाड़ हमने जरूर खड़ी कर ली है जो हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों को एक-दूसरे से बेहद दूर करती है। इस बाड़ में हमारे पूर्वाग्रहों के कटीले तार हैं जिससे हमेशा राजनीति का करंट गुजरता रहता है।

नफरत के इस जंगल को पार करती हुई एक बस सुरक्षित लाहौर पहुंचे तो बड़ी बात है। सरहद के दोनों तरफ बाल ठाकरे तैनात हैं, आमादा हैं इस बात पर कि बस आने-जाने नहीं देंगे। यह दरअसल उनके किस्से का डर है जो बसों और ट्रेनों को रोकता है। वरना एक बस क्या कर सकती है? वह जंगल को खत्म नहीं कर सकती। वह नफरत की बाड़ गिरा नहीं सकती। वह बस लोगों को ला और ले जा सकती है। लेकिन जंगल के बीच कोई ऐसी सड़क नहीं बननी चाहिए जिससे पता चलता हो कि पाकिस्तान इतना करीब है। जिससे पाकिस्तान जाने या हिंदुस्तान आने की इच्छा पैदा होती हो और यह जानने की गुंजाइश बनती हो कि दरअसल हिंदुस्तान या पाकिस्तान शैतानों या दुश्मनों के देश नहीं हैं वे एक सी जमातों के देश हैं जो अब एक भले न हों, लेकिन जिनके बीच दूरी का कोई मतलब नहीं है।

मंटो का वह पागल नायक अब नहीं है जो टोबा टेक सिंह नाम के गांव की तलाश कर रहा था जिसके बारे में किसी को पता नहीं था कि वह हिंदुस्तान में है या पाकिस्तान में। शायद वे, मसले के मालिक भी नहीं रह गए होंगे जिनकी आत्मा एक देश में रह गई और जिस्म दूसरे देश में चला गया और जो बरसों बाद आकर अपनी पुरानी मिट्टी पर रोते रहे थे। 'आग का दरिया' की तलअत को खुद सिखता कांग्रेसी से मुस्लिम लीगी बना विज्ञान का छात्र कमाल हिंद और पाक के बीच की जिस दुविधा का शिकार था, अब वह भी उस रूप में नहीं रह गई है। लेकिन फिर भी सैकड़ों पुल हैं और साझा जीवन, इतिहास और संस्कृति की हजारों नदियां हैं जिनके सहारे दोनों देशों में आना-जाना हो सकता है। एक बस सिर्फ इतना ही करती है कि जो राजनीति की धूल-गर्द में ओझल हो गए इन पुलों को नए सिरे से पहचानने का अवसर देती है। बताती है कि जो बहुत दूर लग रहा है, वह उतना दूर भी नहीं है, बल्कि बहुत करीब है। जो लोग इस बस को चलने नहीं देना चाहते, वे दरअसल नहीं चाहते कि ये पुल दुबारा दिखाई पड़ें और नफरत के इस जंगल का भेद लोगों के सामने खुले जिसके बने रहने से ही उनकी राजनीति चलती है।

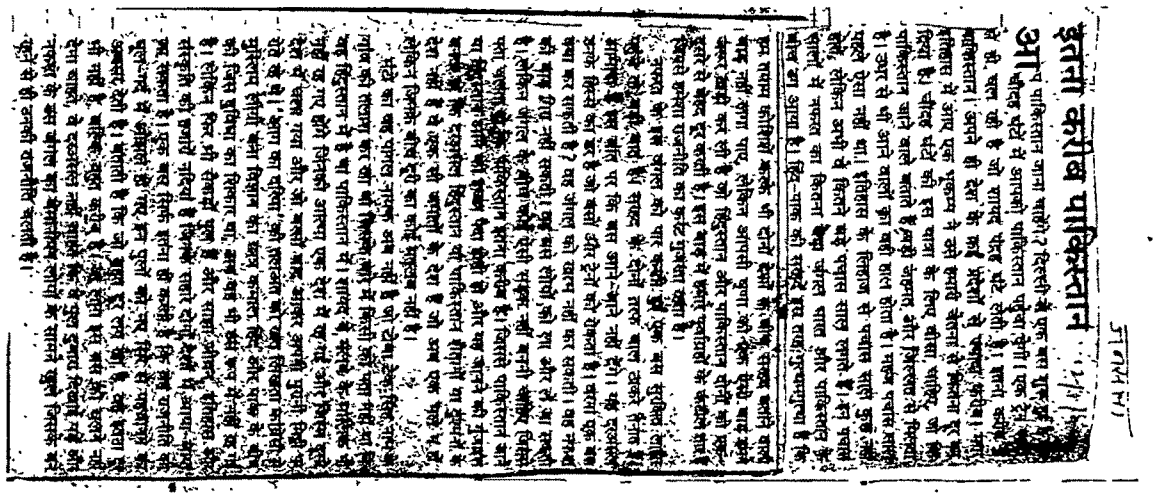

सम्पादकीय, विश्लेषणात्मक समाचार और आलेख, रिपोर्ताज और फीचर के लिए अपेक्षाकृत अधिक समय मिला जाता है और शैली प्रयोग की गुंजाइशें भी होती है। यही कारण है कि अभिनव शैलियों के प्रयोग इन्हीं क्षेत्रों में सबसे अधिक मिलेंगे। हम देखते हैं कि शैली का विश्लेषण पत्रकारिता में दो स्तरों पर सम्भव है - एक है भाषा का यानि कला का पक्ष, जो शैली का बाह्य स्वरूप कहलाता है। इसमें शब्दों और पदों का चुनाव, रूपक, उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग, वक्रोक्ति और भाषा प्रवाह आ जाते हैं। दूसरा पक्ष है लेखक का वैचारिक पक्ष, जिसमें उसकी जीवन दृष्टि, मूल्य बोध, ओजस्विता, निर्भीकता या इनका अभाव यानि लेखक का व्यक्तित्व और उसकी नीयत शामिल होती है।

अगर लेखक के पास तर्क है, दृष्टि है, उसका अनुभूति क्षेत्र व्यापक है और उसके पास कहने के लिए कुछ खास है तो वह कलापक्ष की ज्यादा चिन्ता किए बिना अपनी बात आकर्षक ढ़ंग से कह सकता है। उसकी शैली में कुछ न कुछ अनुठापन तो होगी ही। इसके विपरीत दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि लेखक का विचारपक्ष इतना प्रबल न हो या निर्भीकता से अपनी बात नहीं कहना चाहता हो लेकिन अच्छा रूपक बांध सकता है और शब्दों का खेल दिखा सकता है। इस तरह की शैली या शैलियों में लिखी गई चीज मजा तो देगी किन्तु सम्भावना इस बात की अधिक रहती है कि इस आडम्बर में मूल समस्या उलझकर रह जाए या उस ओर पाठक का ध्यान ही न जाए। अन्ततः यह पत्रकार पर निर्भर करता है कि वह क्या प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है और पाठक से क्या कहना चाहता है। सिर्फ चमत्कृत करना उसका उद्देश्य है या सोचने के लिए प्रेरित करना।

हिन्दी की प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रिका 'इण्डिया टुडे' से उद्धृत एक विश्लेषणात्मक समाचार देखें :

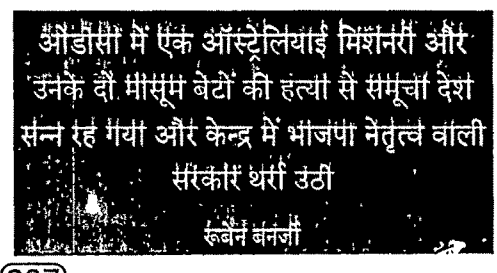

आखिरी घड़ी थी. उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सका. जलती हुई गाड़ी में मदहोश हुए अनजाने तीन प्राणी आपस में एक-दूसरे से लिपटे हुए थे. शायद वे अंतिम क्षणों तक उन्होंने अनजाने भीड़ से एक दूसरे को बचाने की कोशिश और मोहब्बत कायम रखी थी, लेकिन ओडीसा के क्योंझर जिले के मनोहरपुर गांव में 22-23 जनवरी की उस काली रात को अभागे पिता और उनके दोनों बेटों की कोई कोशिश काम नहीं आई. वहशी भीड़ ने उन्हें उनकी पुरानी विलीज़ स्टेशन वैगन (गाड़ी) में आग लगा दी. तीनों उसी गाड़ी में सो रहे थे.

इंसानियत को शर्मसार कर दिया गया और ऑस्ट्रेलिया से आए ईसाई मिशनरी 58 वर्षीय ग्राहम स्टेंस और उनके दो बेटे 10 वर्षीय फिलिप और 7 वर्षीय टिमोथी को जिंदा ही जला दिया गया. धू-धू कर जलती लपटों की चिंगारियां पड़ते ही हत्यारी भीड़ रात के अंधेरे में विलीन हो गई. लेकिन इस खूनी होली से पैदा हुई आंच घटना के हफ्तों बाद भी मद्धिम नहीं पड़ी है.

ईसाइयों के खिलाफ अब तक कमोबेश गुजरात तक सीमित रहे अभियान ने ओडीसा में ऐसा घिनौना रूप अख्तियार किया कि सारा देश सन्न रह गया. प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भी शर्म से सिर झुका लिया. हर तरफ से उनकी सरकार की भर्त्सना होने लगी. राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने यह कहते हुए मानो सबकी ओर से क्षोभ व्यक्त किया कि यह नृशंस हत्याकांड "समय की कसौटी पर खरी उतरी सहिष्णुता और सद्भाव का घोर उल्लंघन है. इन हत्याओं की गणना दुनिया के निकृष्ट कृत्यों में की जानी चाहिए." इस हत्याकांड का आरोप विहिप और आरएसएस से संबद्ध एक उग्र हिंदू संगठन बजरंग दल पर लगने से प्रधानमंत्री ने तीन कैबिनेट मंत्रियों को मनोहरपुर रवाना कर दिया और सुप्रीम कोर्ट के एक न्यायाधीश की अध्यक्षता में घटना की न्यायिक जांच की घोषणा की.

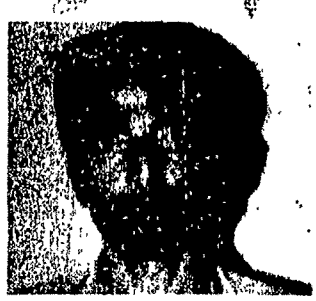

लेकिन कड़े से कड़े शब्दों में की गई भर्त्सना भी ओडीसा के आदिवासी जिले मयूरभंज के मुख्यालय बारीपद में व्याप्त रोष के आगे बौनी थी. स्टेंस ने बारीपद को ही अपना घर बना लिया था. जिलाधीश आर. बालकृष्णन ने कहा, "यह हम सबके व्यक्तिगत शोक की तरह है." सीधे-सादे कपड़े पहने, चिरपरिचित हैट लगाए, अपनी

कथित हत्यारा दारा सिंह फरार है

जर्जर साइकिल पर चलने वाले साइबो—यहां के लोग उन्हें इसी नाम से बुलाते थे—पिछले 35 वर्षों से बारीपद का अभिन्न अंग बन चुके थे. यहां वे "ईश्वर का काम" करते हुए कुष्ठ रोगियों की सेवा-सुश्रूषा में लगे रहते थे. ऐसे रोगियों के लिए उन्होंने शहर से बाहर आश्रम बनवाया था.

ब्रिस्बन में जन्मे इस ऑस्ट्रेलियाई की किशोरवय में ही बारीपद के सांतनु सत्पथी से

ग्लेड्स और ईस्टर स्टेंस का कार्य आगे बढ़ाने के लिए कृतसंकल्प हैं

पत्र-मित्रता हो गई थी. स्टेंस का जन्मदिन भी उनके जन्मदिन पर ही पड़ता था. समुंदर पार की यह दोस्ती फलती-फूलती रही और एक दिन स्टेंस अपने दोस्त से मिलने बारीपद आ गए. यह बात 1965 की है और फिर वे अपने देश कभी नहीं लौटे. इस इलाके की सुंदरता के अलावा ऑस्ट्रेलिया के लेप्रसी मिशन की सहायता से पिछली सदी से यहां चल रहे लेप्रसी होम (कुष्ठ रोग चिकित्सालय) से वे अत्यंत प्रभावित हो गए थे. बमुश्किल स्कूली शिक्षा खत्म कर चुके स्टेंस ने अंततः अपने जीवन का उद्देश्य पा लिया. उन्होंने लेप्रसी होम के लिए खुद को समर्पित कर दिया. इसके अलावा एवेंजेलिकल मिशनरीज़ सोसायटी के संयोजक और कोषाध्यक्ष होने के नाते बाइबल का उपदेश देने में वे निमग्न हो गए.

उनकी समर्पित सेवा ने बहुतों का दिल जीत लिया था. धाराप्रवाह ओडिया और स्थानीय संथाली बोली बोलने वाले स्टेंस और उनकी पत्नी ग्लेड्स, जिनसे '80 के दशक में उनकी शादी हुई, स्थानीय समाज के स्तंभ थे. तीन साल पहले बारीपद में एक भयंकर अग्निकांड में

कम-से-कम 100 लोग जलकर मर गए थे और सैकड़ों घायल हो गए थे. उस वक्त स्थानीय अस्पताल घायलों की देखभाल करने में असमर्थ हो गया था. लेकिन स्टेंस दंपती—ग्लेड्स प्रशिक्षित नर्स हैं—ने रात-रात जागकर घायलों की सेवा की थी. स्थानीय रोटरी चैप्टर के 2001 तक के लिए निर्वाचित अध्यक्ष स्टेंस ने पिछले महीने हुए पल्स पोलियो अभियान में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था.

लेकिन ईसाई उपदेशक की भूमिका का खामियाजा उन्हें अपने भयावह अंत से चुकाना पड़ा. महामारी, कुपोषण और निरक्षरता की मार से त्रस्त ओडीसा नितांत पिछड़ा राज्य है, लेकिन धार्मिक सरगर्मी से लबरेज है. आदिवासियों के दिलो-दिमाग पर कब्जा जमाने के लिए ईसाई और हिंदू संगठनों के बीच होने वाली जोर-आजमाइश का अखाड़ा बन चुका है ओडीसा. पिछले साल राज्य के 30 में से 10 जिलों में हिंदुओं और ईसाइयों के बीच कम-से-कम 30 झड़पें हो चुकी हैं. रक्षा मंत्री जॉर्ज फर्नांडीस, जो मनोहरपुर जाने वाले मंत्रिमंडलीय दल के सदस्य थे, के मुताबिक 1986 और 1998 के बीच ओडीसा में चर्चों पर करीब 60 हमले हो चुके हैं, "जो किसी भी राज्य के मुकाबले सर्वाधिक हैं."

पिछले महीने मनोहरपुर में एक और जंगल शिविर आयोजित कर स्टेंस ने आफत मोल ले ली थी. 14 वर्षों से ऐसे वार्षिक जंगल-शिविर आयोजित कर वे गांवों के नियमित दौरे करते और आदिवासियों को सार्वजनिक स्वास्थ्य से लेकर बाइबल तक विभिन्न विषयों की शिक्षा देते. ओडीसा चर्च ऑफ गॉड एसोसिएशन के रेवरेंड प्रदीप कुमार दास कहते हैं, "जंगल शिविर नैतिक बलवर्द्धन सहित विकास की दिशा में एक बड़ा कदम है... हमारे कमांडमेंट (धर्मादेश) में कहा गया है कि हम बाइबल का प्रचार करें और हम वही करते हैं." 150 संथाल परिवारों का यह धूलभरा, खासा दुर्गम गांव मनोहरपुर भी मजहबी अविश्वास का शिकार हो गया था. गांव के 22 परिवार ईसाई बनाए जा चुके हैं. 20 जनवरी को जब स्टेंस अपने दो पुत्रों और कुछ प्रचारकों के साथ वहां पहुंचे तो यह गांव धार्मिक आधार पर पूरी तरह बंटा हुआ था.

उनकी पत्नी ग्लेड्स कहती हैं, "ग्राहम ने धर्मांतरण कभी नहीं करवाया, वे तो बस यीशू का संदेश प्रचारित कर रहे थे." हालांकि दूसरे लोगों का मानना है कि उनके प्रचार की परिणति अंततः धर्मांतरण में ही होती थी. राज्य के हिंदू जागरण सामुख्य के संयोजक सुभाष चौहान कहते हैं, "वे इसलिए मारे गए क्योंकि वे धर्मांतरण करवा रहे थे. लोगों ने गुस्से और आवेश में आकर उनकी हत्या कर दी होगी." स्थानीय सरपंच ठाकुरदास मुर्मु भी मानते हैं, "आक्रोश बहुत दिनों से पनप रहा था." आम धारणा के विपरीत धर्मांतरण उस आक्रोश की फौरी वजह नहीं थी. मनोहरपुर में आखिरी धर्मांतरण एक साल पहले हुआ था. हाल के महीनों में तनाव की वजह धर्मांतरित हुए और दूसरे संथालों के बीच परंपरागत आदिवासी रीति-रिवाजों पर चल रहा टकराव ही थी. पिछले वर्ष जून में राजा त्यौहार के दौरान यह टकराव प्रमुखता से उभरा. संथालों की मान्यता है कि इस उत्सव के दौरान पृथ्वी रजस्वला होती है, इसलिए तब खेती नहीं की जाती. लेकिन धर्मांतरित संथालों ने इस परंपरा की अवहेलना कर त्यौहार में भी खेत जोतना जारी रखा. इसी बात को लेकर गर्मागर्मी हुई. विवाद तब और भड़का जब जनवरी के आरंभ में गांव में हुई एक ईसाई शादी में संथाली ईसाई कैरोल गाने पर रूढ़िवादी आदिवासियों ने आपत्ति उठाई.

संथालों को यह सांस्कृतिक अलगाव उत्तेजित कर गया. कुछ ही लोगों के पास धान पैदा करने लायक खेती है, वह भी साल में एक बार. बाकी लोग पास के जंगलों में जाकर साल के पत्ते तोड़ते हैं और उनकी प्लेटें बना कर जैसे-तैसे अपनी आजीविका चलाते हैं. स्टेंस के गांव में पहुंचने से उन्हें उन लोगों से भी हिसाब चुकता करने का मौका मिल गया जिन्होंने परंपरागत रिवाजों के खिलाफ जाने की जुर्रत की थी.

उत्तर प्रदेश के इटावा जिले के एक धर्मांध हिंदारा सिंह के रूप में उन्हें जैसी चाहिए थी, वैसी मदद मिल भी गई. ~~दारा सिंह 1980 से ई~~

यह भी गौरतलब है कि स्थानीय निवासियों द्वारा मुख्यमंत्री जानकी बल्लभ पटनायक, गृह सचिव और स्थानीय विधायकों से शिकायत के बाद भी राज्य सरकार दारा सिंह की गतिविधियों से आंखें मूंदे रही. यही नहीं, स्टेंस की हत्या के समय जिले में पुलिस का कोई मुखिया ही नहीं था. पिछले तीन महीनों से कांग्रेस के अंदरूनी झगड़ों के चलते पुलिस अधीक्षक का पद खाली पड़ा हुआ है. अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक छुट्टी पर थे और पूरा क्षेत्र एक डीएसपी के जिम्मे था. मनोहरपुर के निवासियों ने कैबिनेट मंत्रियों के दल को राज्य के मंत्री और स्थानीय कांग्रेस विधायक जयदेव जेना से दारा सिंह की निकटता के बारे में भी बताया. जेना आरोपों का खंडन करते हैं, "ऐसी नृशंस हत्याओं की आड़ लेकर राजनैतिक बदला भंजाना निहायत घटिया हरकत है."

बेशक ऐसा करना गलत है, लेकिन स्टेंस की मौत को राजनैतिक वर्चस्व की लड़ाई का मौका मानने की होड़ शुरू हो चुकी है. मुख्यमंत्री पटनायक ने संघ परिवार के खिलाफ फैले आक्रोश का इस्तेमाल अंजना मिश्र सामूहिक बलात्कार कांड से लोगों का ध्यान हटाने के लिए किया तो गृह मंत्री लालकृष्ण आडवाणी ने पूरी जांच का इंतजार किए बिना ही बजरंग दल को बरी कर दिया. कांग्रेस महासचिव माधवराव सिंधिया के इस तीखे बयान पर कि "अब वक्त आ गया है कि आडवाणी और वाजपेयी अपना बोरिया-बिस्तर समेट लें," जार्ज फर्नांडीस ने एक घिनौनी साजिश की ओर इशारा करते हुए कहा कि, "पोकरण विस्फोटों के बाद से बहुत सी ताकतें नहीं चाहतीं कि यह सरकार चले. कभी किसी ने फैसला कर लिया होगा कि स्टेंस की हत्या करवानी है. हम अभी तक इस हत्या का मकसद नहीं समझ पाए हैं." लेकिन सरकार के सामने एक जटिल सवाल है कि क्या भाजपा उन ताकतों का शिकार हो गई है, जिन्हें कभी उसी ने आगे बढ़ाया था.

देश जहां एक कटु सचाई के सामने आने का इंतजार कर रहा है, इस बात पर पश्चाताप ही किया जा सकता है कि राजनैतिक और धार्मिक मतभेदों को एक व्यक्ति और उसके दो मासूम बेटों को जिंदा भूनकर सुलझाने की कोशिश की गई. स्टेंस की मौत भारत की चेतना पर एक बदनुमा दाग बनी रहेगी इस हादसे ने एक महान देश को बहुत छोटा बना दिया है. और बहुत कुरूप भी.

—साथ में फरजंद अहमद

उपर्युक्त रिपोर्टिंग में रिपोर्टर ने अपनी रिपोर्ट कलापक्ष की चिन्ता किए बगैर आकर्षक ढंग से प्रस्तुत की है। शैली का सजगता से प्रयोग किया गया है किन्तु भाषा सहज और गैर अलंकारिक है। पत्रिकाओं में रिपोर्टिंग का एक लाभ यह है कि उसके साथ दी गई तस्वीरें रिपोर्ट को अधिक विश्वसनीय व रोमांचक बना देती हैं। इनमें चित्रों की अपनी भाषा होती है। उपर्युक्त रिपोर्ट के साथ प्रकाशित निम्न चित्र घटना का गवाह होने के साथ-साथ पाठक की कल्पना को भी यथार्थ के धरातल पर ले आता है। रिपोर्ट के साथ उक्त तस्वीरें पाठक के विचारों को भी मंथित करती हैं।

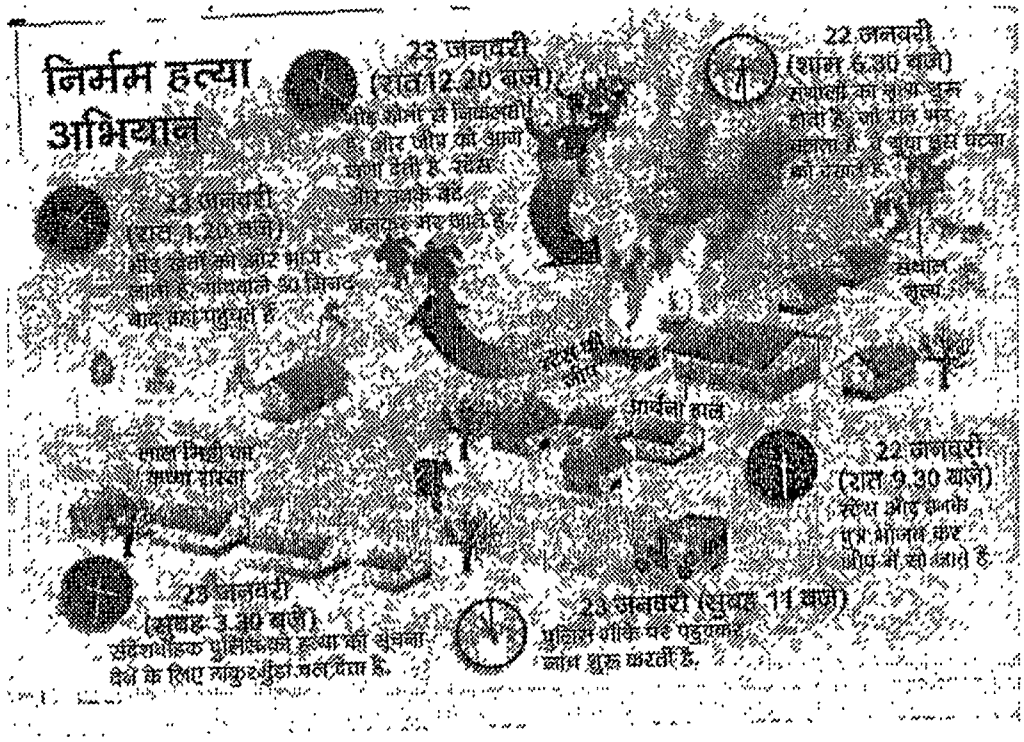

उपर्युक्त रिपोर्ताज सरल वर्णनात्मक शैली में आक्रोशरहित व्यंग्य और चिंतन प्रधान आलेख का नमूना है। यह विश्लेषणात्मक वर्णन-शैली का एक अच्छा नमूना है जो पाठक को दुर्घटना के हर पहलू से परिचित कराती है। इन्हीं विशिष्टियों के कारण इण्डिया टुडे ने हिन्दी पाठकों के बीच अल्प समय में लोकप्रियता अर्जित कर ली है। एक ओर जहाँ धर्मयुग, दिनमान, माधुरी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान जैसी पत्रिकाओं का प्रकाशन बन्द हुआ, दूसरी ओर इण्डिया टुडे, रविवार, ब्लिट्ज आदि हिन्दी संस्करणों को लोगों के बीच प्रसिद्धि प्राप्त हुई। टी.वी., कम्प्यूटर, इन्टरनेट जैसे इलेक्ट्रोनिक मीडिया के बीच हिन्दी पत्रिकाओं का न केवल जीवित रहना बल्कि लोकप्रियता हासिल करना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कहलाएगी। हिन्दी समाचारपत्रों की संख्या में भी विस्तार हुआ है। टी.वी. व इंटरनेट जिनमें अद्यतन समाचार थोड़ी-थोड़ी देर में और घटना के कुछ पलों के भीतर प्रसारित होते रहते हैं, के बावजूद समाचार पत्रों की प्रमुखता आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। आज भी सुबह की चाय के साथ हमें समाचार पत्र न मिले तो बेचैनी-सी होने लगती है। जो समाचार हम रेडियो टी.वी. पर सुन चुके हैं और इंटरनेट पर देख चुके हैं उन्हें समाचार पत्र में विस्तार से पढ़ने की जिज्ञासा मन में बनी रहती है। यही कारण है कि समाचार पत्र न केवल जीवित हैं बल्कि हमारे दैनिक जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा बन चुके हैं। दरअसल समाचार

पत्रों की महत्ता आज से नहीं बल्कि हिन्दी पत्रकारिता के प्रारम्भ से ही है। अन्तर आया है तो समाचार के प्रस्तुतीकरण में। भाषा पहले से अधिक परिष्कृत हुई है। सम्पादकीय और आलेखों में मुहावरों का प्रयोग बढ़ा है। भाषा की क्लिष्टता में भी कमी आई है। फल-स्वरूप आम शिक्षित वर्ग में हिन्दी दैनिकों के प्रति रुझान बढ़ा है। संचार माध्यमों में प्रतिस्पर्धा के कारण समाचार पत्रों की विश्वसनीयता भी बढ़ी है। वस्तुतः समाचार-पत्रों की विश्वसनीयता ही उसकी लोकप्रियता का मूल आधार है। समाचार पत्रों में प्रकाशित आकर्षक विज्ञापनों का इनकी लोकप्रियता में अहम योगदान है। विज्ञापनों में शब्द-सीमा की वजह से गागर में सागर भरते हुए पाठकवर्ग को आकर्षित करने का प्रयास किया जाता है। बाजार में प्रतिस्पर्धा का असर समाचार पत्रों और पत्रिकाओं पर भी पड़ा है। हर प्रकाशक अपने पत्र अथवा पत्रिका को 'सेलेब्ल' बनाने की होड़ में उत्कृष्ट डिजाइन और सामग्री अपने पाठक वर्ग को देने की कोशिश कर रहा है। लाभ निश्चित रूप से पाठक को पहुँचा है। कम से कम मूल्य पर अधिक से अधिक व श्रेष्ठतम सामग्री अपने पाठकों को देने के कारण समाचार पत्र के प्रसार में वृद्धि हुई है। हम एक किसान या मजदूर को भी चाय की थड़ी या खोखे पर चाय की चुस्की के साथ समाचार-पत्र का लुत्फ उठाते देख सकते हैं। भाषा के सरल प्रयोग से ऐसा सम्भव हो पाया है। आज की हिन्दी लोकजीवन से आहरित है। यह विद्वानों की बपौती नहीं रह गई है। जनसाधारण ने इसे पहले भी लोकप्रिय बनाया था और इसी जनाधार पर हिन्दी आज भी टिकी हुई है। यही हिन्दी का जनसंचार माध्यमों में विस्तार का रहस्य भी है।

इंटरनेट पर हिन्दी पत्रकारिता

आज हिन्दी पत्रकारिता साइबर-स्पेस में जा चुकी है। हिन्दी के कई दैनिकों - नई दुनिया, नवभारत, दैनिक जागरण, आदि-की वेबसाइटें आज इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। उन्हें इंटरनेट पर देखना पढ़ना एक नया अनुभव है। यही पत्रकारिता का भविष्य है। आने वाली सदी की पत्रकारिता मूलतः साइबर स्पेस की पत्रकारिता होगी। इसका

अर्थ यह नहीं है कि कागजी अखबार नहीं होंगे। वे होंगे, लेकिन उनकी संरचना, स्वरूप, प्रबन्धन, सूचना संकलन, वितरण आदि सभी इस नए साइबर स्पेस से प्रभावित होंगे और एक नया स्वरूप लेंगे।

इंटरनेट ज्ञान का ऐसा भंडार है जिसकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं। सूचना और ज्ञान के इस भंडार के समय, स्थल और दूरी की पाबंदी के बिना चाहे जो जानकारी प्राप्त की जा सकती है। विश्व के किसी कोने में पहुँचकर हम इंटरनेट के जरिए अपने देश के पसंददीदा समाचार पत्र के पन्ने पलट सकते हैं। इंटरनेट पर मौजूद विभिन्न समाचार पत्रों के वेबसाइट उपलब्ध होने के कारण इसे 'नेट संस्करण' या ऑन लाइन पत्रकारिता के नाम से जाना जाता है। आज समूचे विश्व में करोड़ों लोग समाचारों के लिए इंटरनेट पर निर्भर करते हैं। पिछले दो वर्षों से 'आन लाइन' पत्रकारिता विश्व में होने वाली हर बड़ी घटना के साथ नए आयाम स्थापित कर रही है। लगभग तीन-चार वर्ष पहले जब समूचे विश्व में इंटरनेट पर वेबसाइट की लोकप्रियता बढ़ी, तब प्रमुख समाचार पत्र समूहों ने समाचारों को जल्द से जल्द विश्व के हर कोने तक पहुँचाने के लिए इलेक्ट्रोनिक जैसे सशक्त माध्यम का इस्तेमाल समाचार वितरण के लिए करने का सोचा। इसी सोच ने इन्टरनेट पर समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के संस्करणों की शुरुआत की जिन्हें 'नेट संस्करण' या 'ऑन लाइन संस्करण' कहा जाता है।

शुरुआती दौर में प्रकाशन संस्थाओं के कुछ इंटरनेट संस्करण ऐसे थे जो बहुत कम निवेश से बनाए गए थे मानो मात्र इंटरनेट पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के उद्देश्य से बनाए गए हों। लेकिन सी.एन.एन. और एन.बी.सी. जैसे टी.वी. चैनलों ने इस दौड़ में शामिल होकर ऑन लाइन पत्रकारिता का पूरा परिदृश्य ही बदल दिया। हालांकि अधिकतर समाचार पत्र छपाई चक्र का पालन करते हुए दिन में केवल एक बार अपनी साइट को अद्यतन करते हैं, लेकिन उक्त दोनों चैनल अपने चौबीस घण्टों के समाचार चैनलों की मशीनरी का भरपूर इस्तेमाल करते हुए तात्कालिक समाचार

प्रदान कर रहे हैं। समाचार-पत्रों के अलावा नेट पर ऐसी पत्रिकाओं के साइट भी मौजूद हैं जिनका कोई छपाई संस्करण नहीं है, उनके केवल नेट संस्करण ही हैं। इन संस्करणों को 'वेबजीन' और 'नेटजीन' के नाम से जाना जाता है।

इन्टरनेट की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह 'अन्तर्सक्रिय' (इंटरएक्टिव) मीडिया की कल्पना को संभव बनाता है। प्रिंट मीडिया इंटरएक्टिव मीडिया नहीं होता। यदि वह होता भी है तो 'सम्पादक के नाम पत्र' कालम से। किन्तु इंटरनेट के नाम में ही अन्तर्सक्रियता है। इस अर्थ में यह अखबार से भिन्न है। यहाँ हम बटन दबाते ही क्रय-विक्रय कर सकते हैं, सूचना ले-दे सकते हैं, कांफ्रेंस कर सकते हैं। इस तरह अखबार 'इंटर-एक्टिव' माध्यम बनकर 'एक तरफा' सूचना नहीं देते बल्कि अन्तर सक्रिय सूचना देते हैं। यहाँ अखबार चौबीसों घंटे खुलने और चलने वाला सुपर बाजार बन जाता है।

प्रिंट मीडिया ने जनता में से 'पाठक' का निर्माण किया था, इन्टरनेट जनता को 'सर्फर' में बदलता है। एक समाचार पत्र की अर्थव्यवस्था प्रसार पर चलती है। यहाँ भी जितने 'सर्फर' उतने ही 'हिट्स' और उतनी ही वेबसाइट की दृश्यमानता और उतना ही लाभ। समाचार पत्र के प्रसार के आंकड़े प्रायः संदिग्ध पाए जाते हैं। उनकी प्रसार संख्या के बारे में सही जानकारी तभी मालुम पड़ती है जब अगले दिन पिछले अंक बिना बिकी प्रतियां लौटती हैं। वेबसाइट पर कोई प्रति नहीं लौटती क्योंकि यहाँ एक 'सुपर कॉपी' होती है जो सबके लिए होती है। यहाँ 'सर्फर' जब भी किसी अखबार की वेबसाइट पर जाता है तो वह उस वेबसाइट को 'हिट' करता है और इस तरह हर 'हिट' अपने आप देखी जाती वेबसाइट में चिन्हित होता जाता है। इस प्रकार से हर वेबसाइट के पास अपने सर्फरों की सटीक संख्या होती है।

इंटरनेट पुराने ढंग की पत्रकारिता को खत्म कर देता है। इंटरनेट का संजाल (नेटवर्क) किसी भी किस्म के सेंसर को संभव नहीं रहने देता। इन्टरनेट का अर्थ है सेंसर से परे चले जाना। अमेरिका के राष्ट्रपति क्लिंटन के यौनाचार के बारे में इन्टरनेट

पर उपलब्ध कथा को तभी रोका जा सकता था, जब सारी टेली. लाइनों को खत्म किया गया होता। किन्तु कैनेथ स्टार द्वारा क्लिंटन के अमर्यादापूर्ण आचरण के विरुद्ध अभियोग पत्र के रूप में तैयार की गई रिपोर्ट जिस वक्त अमेरिकी सिनेट में रखी गई, ठीक उसी वक्त यह रिपोर्ट इंटरनेट, सी.एन.एन. इत्यादि के जरिए कई वेबसाइटों पर पूरी धरती पर उपलब्ध थी। साथ ही यह कई भारतीय अखबारों के वेबसाइट पर भी उपलब्ध थी। 445 पेज की रिपोर्ट बटन दबाते ही एक फ्लॉपी में मौजूद थी और सबके लिए थी। हिन्दी के एक दैनिक ने उस रिपोर्ट को 'डाउनलोड' कराकर उसके हिस्से लगातार छापे। सूचना की यह गति प्रिंट मीडिया की प्रक्रिया में सम्भव नहीं । अखबार के लिए टेलीप्रिंटर से आने वाली सूचनाएं अखबार-उन्मुख और मेज पर संपादित होने योग्य होती हैं, उन्हें अन्तिम रूप देने में ज्यादा समय लगता है। अखबार छपने, बंधने, बटने में जितना समय लेता है, इतने में तो इंटरनेट नई सूचनाओं का अंबार लगा देता है। अखबारों की वेबसाइटों में लगातार नई से नई सूचना की पट्टी आती रहती है। प्रिंट-मोड इसका मुकाबला नहीं कर सकता।

प्रिंट मीडिया के वेबसाइट पर जाने के कारणों को खोजा जाए तो उनमें से पहला यह है कि यह एक तकनीक 'वर्क मैनशिप' है। आज की इस स्पर्धा के युग में देर सबेर अखबारों को इन्टरनेट पर जाना होगा। दूसरे, यह कि इससे अखबार को 'ग्लोबल' होने में मदद मिलेगी। हमारे अखबार भी इन्टरनेट पर आकर विश्व के अखबारों के स्तर पर आ जाएंगे। वैसे भी अखबार तकनीक परहेजी नहीं है। जब भी कोई नई तकनीक निकली अखबार उसे अपनाए रहे हैं। लेटर प्रेस से रोटरी और फिर कलर प्रिंट व लेजर प्रिंट अपनाना इस बात का द्योतक है। अतः इन्टरनेट पर अखबार का आना इसका तकनीक-मित्र होना है।

भारत में अभी इंटरनेट प्रारंभिक अवस्था में है। वर्तमान में भारत में लगभग एक लाख तीस हजार इन्टरनेट कनेक्शन हैं। आबादी को देखते हुए हालांकि यह संख्या नगण्य है। किन्तु सम्भावना है कि अगली शताब्दी के दूसरे-तीसरे वर्ष तक भारत में

इंटरनेट कनेक्शनों की संख्या करीब ग्यारह लाख पचास हजार हो जाएगी। जहाँ तक उपलब्ध दैनिकों और पत्रिकाओं की वेबसाइट का सम्बन्ध है, इनमें अंग्रेजी के अखबारों की संख्या फिलहाल सबसे ज्यादा है। हिन्दी के कई दैनिकों की अपनी वेबसाइटें हैं जैसे दैनिक जागरण, नई दुनिया, नवभारत टाइम्स, नवभारत, हिन्दुस्तान, दैनिक भास्कर, राजस्थान पत्रिका आदि कुछ प्रमुख वेबसाइट हैं। किन्तु हिन्दी की कोई पत्रिका वेबसाइट पर नहीं है। छोटे समाचार पत्रों में हैदराबाद के हिन्दी मिलाप, मध्यप्रदेश के एम.पी.क्रॉनिकल और बैंगलूर के 'संजीवजी' के संस्करण भी 'ऑनलाइन' पर है। टी.वी. बुलेटिन 'आज तक' के समाचार भी साइट पर पढ़े जा सकते हैं। हालांकि भारतीय भाषाओं के समाचार पत्र अभी इस दौड़ में पीछे हैं लेकिन सम्भवतः इक्कीसवीं शती में प्रवेश करते-करते भारतीय भाषाई पत्रकारिता वेब पर उपस्थिति प्रभावशाली ढंग से करा पाएगी। हिन्दी में पंजाब केसरी और पंजाब के गुरुमुखी में छपने वाले अजित और जगबानी ने भी जल्दी ही वेब पर आने की घोषणा कर दी है। फिलहाल अधिकांश भारतीय पत्र अभी साइट पूरी तरह स्थापित नहीं कर पाए हैं किन्तु इसकी अहमियत सभी समझ चुके हैं।

प्रसार माध्यमों में हिन्दी

रेडियो (आकाशवाणी) प्रसारणों में हिन्दी : इलेक्ट्रोनिक माध्यम आज के सबसे सशक्त माध्यम हैं। श्रव्य-दृश्य संचार माध्यम के अन्तर्गत रेडियो, टेलीविजन और फिल्म शामिल हैं। रेडियो जनसंचार का एक ऐसा प्रभावी व द्रुतगामी माध्यम है जो एक ही समय में स्थान और दूरी को लांघकर विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँच जाता है। भारत में अधिकतम जनसंख्या तक पहुँचने वाला यह एकमात्र जनसंचार का माध्यम है। भारत में रेडियो प्रसारण का आरम्भ 1923 में कलकत्ता में रेडियो क्लब की स्थापना के साथ हुआ। वर्ष 1927 में बम्बई और कलकत्ता से नियमित रेडियो प्रसारण शुरु हुए। 1936 में दिल्ली में केन्द्रीय स्टेशन की स्थापना की गई। प्रारम्भ में रेडियो का प्रसारण प्राईवेट कम्पनियों के माध्यम से शुरु हुआ। बम्बई से

रेडियो कार्यक्रमों का प्रसारण 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' और डाक तार विभाग ने मिलकर शुरु किया था। दिल्ली केन्द्र से जब रेडियो के प्रसारण शुरु हुए तो शहरी श्रोताओं के साथ-साथ ग्रामीण श्रोताओं का भी ध्यान रखा गया। 1936 में 'इण्डियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' का नाम बदलकर 'ऑल इण्डिया रेडियो' रख दिया गया। इस बीच आकाशवाणी के कार्यक्रमों के बारे में श्रोताओं को जानकारी उपलब्ध कराने के लिए 'इण्डियन लिसनर' नाम की अंग्रेजी तथा उर्दू और हिन्दी में रेडियो कार्यक्रम की पत्रिका 'आवाज' का प्रकाशन शुरु हो चुका था। हिन्दी के श्रोताओं की संख्या को ध्यान में रखते हुए 'आवाज' का विभाजन करके हिन्दी में 'सारंग' नाम से पत्रिका का प्रकाशन किया जाने लगा।

1947 में देश का विभाजन होने के बाद ऑल इण्डिया रेडियो के पास बम्बई, कलकत्ता, लखनऊ और तिरुचनापल्ली स्टेशन रह गए और लाहौर, पेशावर व ढाका स्टेशन पाकिस्तान की सीमा में चले गए। 1949 में इलाहाबाद और अहमदाबाद में रेडियो स्टेशन खोले गए। इसी वर्ष एक महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि अहिन्दी भाषी राज्यों के आकाशवाणी केन्द्रों से हिन्दी में पाठ प्रसारित किए जाने लगे। इसके बाद रेडियो स्टेशनों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई। 1957 में संगीत के हलके-फुलके कार्यक्रमों की एक सेवा 'विविध भारती' शुरू की गई। इसके कार्यक्रम पूरे देश में बहुत लोकप्रिय हुए विशेषकर हिन्दी फिल्मों के गानों के कार्यक्रम की वजह से। 3 अक्टूबर 1957 के दिन 'ऑल इण्डिया रेडियो' का नाम बदलकर 'आकाशवाणी' रख दिया गया। इसके कार्यक्रमों की जानकारी देने वाली पत्रिकाओं 'इण्डियन लिसनर' और 'सारंग' का नाम भी बदलकर 'आकाशवाणी' रख दिया गया। इस समय आकाशवाणी के नेटवर्क में भारत की 95% से भी अधिक जनसंख्या आवृत हो गई है। अधिक से अधिक लोगों तक विज्ञापनों को पहुँचाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञापन-प्रसारण की योजना चालू की गई। इसके फलस्वरूप आकाशवाणी को प्रति वर्ष करोड़ों रुपये की आय होने लगी, साथ ही विज्ञापन के चुटीले व आकर्षक संवाद

भी देश के घर-घर पहुँचने लगे। आकाशवाणी के अन्य कार्यक्रमों के समान विज्ञापनों का भी हिन्दी प्रसार में योगदान कम नहीं है। अकाशवाणी पर विज्ञापन किसी भी निर्धारित कार्यक्रम के समापन और नए कार्यक्रम के समापन और नए कार्यक्रम के बीच में अथवा गीतों के प्रसारण के मध्यक्रम में किए जाते हैं। कुछ प्रसिद्ध विज्ञापनों की झलकें नीचे दी जा रही है :-

- लाइफबॉय है जहाँ, तन्दुरुस्ती है वहाँ (लाइफबॉय)
- लाइफबॉय मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है। (लाइफबॉय)
- पंखा जो गर्मी को हवा कर दे (कंचन पंखे)
- जो घरवाळी न गर्मी लगे ..... (कंचन पंखे)
- आह से आहा तक (मूव)
- चार बूंदों वाला ..... (उजाला)
- बेजोड़ चाय किफायती दाम (रेड लेबल चाय)
- साफ, स्वस्थ और डैंड्रफ़ रहित बालों के लिए (क्लिनिक शैम्पू)
- मुड़-मुड़ के देखे संसार, सुपर रिन की चमकार (सुपर रिन)
- त्वचा ऐसी जिसे बार-बार छूने को जी चाहे (एन्फ्रेंच क्रीम)
- पांच औषधियों वाला पाचन टॉनिक-झंडु पंचारिष्ट
- दूध की सफेदी निरमा से आए, रंगीन कपड़ा भी खिल-खिल जाए (निरमा वाशिंग पाउडर)
- 100% सम्पूर्ण स्नान (नया डेटाल साबुन)
- स्वाद में, तेजी में, आपके ख्यालों सी ताजगी (डबल डायमण्ड चाय)
- प्राकृतिक कोमलता का अहसास (फेयर एण्ड लवली)
- जब खरीदें उषा ही खरीदें (उषा फैन)
- नायसिल लगाइए, घमौरियों से जल्द आराम पाइए (नाइसिल टेल्कम पाउडर)
- कुछ घड़ियों की याद ऐसी होती है

समय की रफ्तार भी जिन्हें मिटा नहीं पाती (एच.एम.टी. घड़ियाँ)

- रेड एण्ड व्हाइट पीने वालों की बात ही कुछ और है (सिगरेट)
- पल-पल महके ऐसे, पहला प्यार हो जैसे (नया जय सौंदर्य साबुन)
- त्वचा में ज्योति जगाए (रेवसोना)
- सेरेलेक का प्रत्येक आहार आपके शिशु को सारा पौष्टिक तत्व प्रदान करता है।

रेडियो विज्ञापन चूंकि श्रव्य होते हैं, अतः इनमें व्यतिरेक होता है। इस दृष्टि से हम रेडियो विज्ञापनों की श्रव्य माध्यम में प्रस्तुति की विशेषताओं को तीन भागों में रख सकते हैं - प्रधान, गौण, अतिरिक्त। प्रधान में शब्दों का बलाघात आता है। संदेश की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण शब्दों पर बल देकर बोलने से उनकी विशिष्टता श्रोता तक पहुँचती है। यह बलाघात एक विज्ञापन में प्रायः एक से अधिक शब्दों पर रहता है। गौण भाग में संगीत तत्व होता है। तुकांत संगीत की चाशनी में लपेटकर प्रस्तुत किए जाने के कारण श्रोता को अपनी ओर विशेष रूप से आकृष्ट करते हैं। किसी संदेश अथवा उसका कुछ अंश तीव्र गति से प्रस्तुत किया जाता है, उनका सम्बन्ध जोश व साहसिकता के साथ होता है जैसे कोकाकोला, थम्स अप, मिरिंडा, मोटर साइकल आदि। इस प्रकार का संदेश उच्च स्वर में सुनाया जाता है। कुछ संदेश मन्द गति से प्रस्तुत किए जाते हैं। कोमलता तथा सौम्यता के भाव वाली वस्तुओं, प्रसाधन सामग्री, आदि के विज्ञापन मन्द गति तथा निम्न स्वर में पेश किए जाते हैं।

अतिरिक्त में तरह-तरह की आवाजों का समावेश रहता है जैसे फुसफुसाहट, मरमराहट, खिलखिलाहट, गूंज आदि। इनका संदेश के अर्थपक्ष से सीधा सम्बन्ध रहता है। दूसरी विशेषता है, संवाद-प्रधान विज्ञापनों में एक से अधिक स्वरों का संगम। एक स्वर पुरुष का होता है, दूसरा नारी का और कभी-कभी बच्चे का भी अलग-अलग वाक्यांशों को अलग-अलग स्वरों से प्रस्तुत कर संदेश को प्रभावी बनाने की कोशिश की जाती है।

हम देखते हैं कि विज्ञापनी हिन्दी में बोधगम्यता होती है, यह शीघ्र समझ में

आने वाली हिन्दी है। छोटे सरल वाक्य, सुपरिचित शब्दावली, श्रव्य माध्यम के ध्वनिगुण आदि विशेषताओं के कारण यह श्रोता का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। मुहावरे, अलंकार, तुकांत, पद्यांश, अनुप्रास की छटा के अलावा इनमें स्मरणीयता अर्थात याद रह जाने वाले संदेश होते हैं। विज्ञापनी हिन्दी और रेडियो का व्यापक आवृत क्षेत्र दोनों का हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अनमोल योगदान रहा है।

विज्ञापन की भाषा की सरलता के बारे में तो दो राय हो ही नहीं सकती थी किन्तु आकाशवाणी के समाचारों तथा अन्य कार्यक्रमों की भाषा के विषय में भी शुरु से एकमत था कि इन कार्यक्रमों की भाषा ऐसी हो जो आम जनता आसानी से समझ ले। यह सच है कि आकाशवाणी की भाषा का एकदम आदर्श रूप आज तक विकसित नहीं हो पाया है किन्तु पिछले अनेक वर्षों के प्रसारणों के अनुभव के कारण भारतीय भाषाओं के प्रसारण के लिए एक अलग तरह की शैली, मुहावरे और शब्द-चयन के स्वरूप का विकास हुआ है जो सम्बन्धित भाषा भाषी समुदाय के सामान्य व्यक्ति के काफी निकट है। जहाँ तक हिन्दी का सम्बन्ध है, उसके स्वरूप को लेकर खासकर उर्दू के सन्दर्भ में उसके स्वरूप को लेकर देश में प्रसारण विधा के आदिकाल से ही काफी विस्तार और गहराई से बहस होती रही है। हिन्दी समाचारों की जो भाषा हमें राष्ट्रीय और क्षेत्रीय बुलेटिनों में सुनने को मिलती है वह स्वतंत्रतापूर्ण के समाचार बुलेटिनों की भाषा से बहुत भिन्न है। उन दिनों हिन्दी समाचार भी फारसी लिपि में लिखे जाते थे तथा उनमें उर्दू शब्दों की बहुतायत रहती थी। आजादी के बाद भी हिन्दी बुलेटिन प्रारम्भ में फारसी लिपि में लिखे जाते थे किन्तु बाद में देवनागरी में लिखे जाने लगे। हिन्दी उर्दू तथा हिन्दुस्तानी का विवाद स्वतंत्रता-प्राप्ति और संविधान में हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किए जाने तथा उसके प्रचार प्रसार को बढ़ावा देने का संकल्प किए जाने तक चलता रहा।

गाँधीजी तथा अन्य अनेक नेताओं ने साम्प्रदायिक एकता को ध्यान में रखते हुए पूरे देश में स्वीकार्य एक भाषा के विकास और प्रचलन को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य

से 'हिन्दुस्तानी' भाषा को आगे बढ़ाने का सुझाव दिया । यद्यपि हिन्दुस्तानी का यह प्रयोग अंततः सफल नहीं हो पाया किन्तु रेडियो ने इस राष्ट्रीय प्रयास में बढ़ चढ़कर योग दिया। समाचारों और वार्ताओं में तो आजादी से पहले तक हिन्दुस्तानी का ही प्रयोग होता रहा। हालांकि उर्दू और हिन्दी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं किन्तु इन दोनों की शैलियों के प्रबल समर्थकों ने हिन्दुस्तानी के प्रचलन को सफल नहीं होने दिया। हिन्दी के समर्थकों का आरोप यह था कि हिन्दुस्तानी का प्रयोग और कुछ नहीं उर्दू को पिछवाड़े से लाने का ही एक प्रयोस है कारण कि हिन्दुस्तानी में अरबी, फारसी के शब्दों का इस्तेमाल अपेक्षाकृत अधिक होता था। इस विषय पर राष्ट्रीय स्तर पर बहस चली। इसी सिलसिले में 1939 में 20 से 25 फरवरी तक 'हिन्दुस्तानी क्या है ?' विषय पर रेडियो से एक वार्ता श्रंखला भी प्रसारित की गई जिसमें डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, मौलवी अब्दुल हक, डॉ. ताराचन्द, डॉ.जाकिर हुसैन, आचार्य नरेन्द्र देव और श्री आसिफ अली जैसे नेताओं ने भाग लिया। 1940 में ए.एस.बुखारी, जो उस समय प्रसारण-नियंत्रक नियुक्त हुए थे, ने सभी राष्ट्रीय नेताओं, विद्वानों और साहित्यकारों के सहयोग से इस विवाद को हल करने का प्रयास किया किन्तु सफल नहीं हो सके। आल इन्डिया रेडियो ने हिन्दुस्तानी में कार्यक्रमों को प्रसारित करना जारी रखा, किन्तु इसके विरोध का क्रम धीमा नहीं हुआ। उसी वर्ष जहाँ एक ओर उत्तर प्रदेश की प्रांतीय मुस्लिम लीग ने लखनऊ मे एक प्रस्ताव पारित करके रेडियो की भाषा नीति की निन्दा करते हुआ कहा कि प्रदेश के लोगों की भाषा उर्दू है किन्तु रेडियो-कार्यक्रमों में एक 'अपरिचित भाषा' सुनने को मिलती है। वहीं दूसरी ओर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपने जयपुर अधिवेशन में हिन्दी साहित्यकारों से रेडियो कार्यक्रमों का बहिष्कार करने का आह्वान किया। यह प्रतिबन्ध सम्मेलन ने 1946 में समाप्त किया। इस बीच हिन्दी और उर्दू में अलग-अलग बुलेटिन शुरु करने का सुझाव आया। इस प्रस्ताव का अनेक लोगों ने विरोध किया। सी. राजगोपालाचारी ने मद्रास में वक्तव्य जारी करके कहा - 'यह दुःखद स्थिति होगी कि रेडियो हिन्दुस्तानी

में प्रसारण के प्रयासों को छोड़कर हिन्दी और उर्दू में अलग-अलग बुलेटिन प्रसारित करे।..... मेरी यह धारणा है कि हिन्दी और उर्दू को दो अलग भाषाओं के रूप में सरकारी तौर पर मान्यता मिल जाने से राष्ट्रीय भाषा के प्रसार के आन्दोलन को ठेस लगेगी।'

सन् 1945 में इस विवाद के विभिन्न पहलुओं पर विचार करके अपने सुझाव देने के लिए हिन्दी उर्दू स्थायी सलाहकार समिति का गठन किया गया। इस समिति ने हिन्दुस्तानी को जारी रखने तथा हिन्दुस्तानी शब्दकोष तैयार करने की सम्भावनाओं पर विचार करने के लिए एक समिति बनाने की सिफारिश की जिसे सरकार ने स्वीकार कर लिया। सितम्बर 1946 में अंतरिम सरकार का गठन होने पर सरदार पटेल सूचना व प्रसारण मंत्री बने। उन्हें भी लगा कि रेडियो में हिन्दी के प्रति भेदभाव हो रहा है और उर्दू की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जा रहा है। उन्होंने संतुलन लाने के कई निर्देश दिए। उन्होंने हिन्दी-उर्दू के विवाद को कम करके प्रसारण-भाषा को सरल तथा सुबोध बनाने की आवश्यकता पर बल दिया और इस हेतु कई भाषा-समितियां बनाईं। इन प्रयासों के फलस्वरूप समाचार बुलेटिनों में हिन्दी शब्दों को समुचित महत्व मिलने लगा तथा हिन्दी के साहित्यकारों व विद्वानों का रेडियो कार्यक्रमों में योगदान बढ़ने लगा। देश के विभाजन तथा बाद में संविधान में देवनागरी में लिखी जाने वाली हिन्दी को राजभाषा स्वीकार कर लिए जाने के बाद स्थिति एकदम बदल गई और हिन्दुस्तानी का प्रयोग स्वतः ही समाप्त हो गया। नए-नए हिन्दी कार्यक्रम प्रारम्भ होने लगे और हिन्दी को रेडियो में उचित तथा गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त होने लगा। 1950 में सूचना और प्रसारण मंत्री श्री आर.आर. दिवाकर ने अपनी अध्यक्षता में हिन्दी सलाहकार समिति बनाई। श्री वियोगी हरि, श्री नारायण महथा, श्री एम.सत्यनारायण, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री मगनलाल द्रेसाई, श्री बालकृष्ण शर्मा, डॉ. सुनिति कुमार चटर्जी और डॉ. ताराचन्द इस समिति के सदस्य थे। इस बात पर भी ध्यान दिया गया कि समाचार बुलेटिनों, वार्ताओं, नाटकों तथा अन्य

प्रकार के कार्यक्रमों की भाषा ऐसी हो जिसे अधिक से अधिक लोग समझ लें।

प्रारम्भ में समाचारों के लिए हिन्दी भाषा को क्षमता प्राप्त न होने कारण अंग्रेजी से हिन्दी का अनुवाद करने की परम्परा थी। लेकिन आगे चलकर समाचारों की भाषा में संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू, देशज, अंग्रेजी आदि शब्दों के समावेश से भाषा को प्रामाणिकता के साथ-साथ नई शक्ति भी प्राप्त हुई। आज हमारे हिन्दी समाचार प्रसारण काफी स्तरीय व लोकप्रिय हैं। हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में हिन्दी समाचारों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। समाचार साहित्य कां भाग न हो लेकिन भाषा के प्रचार-प्रसार का माध्यम अवश्य है। कभी हम समाचारों का प्रसारण भाषा के द्वारा करते हैं और कभी हम भाषा का प्रसारण समाचारों के माध्यम से करते हैं; प्रसारण के समय भाषा के रूप में समाचार और समाचारों के रूप में भाषा-प्रसारण की यह शक्ति भी है और सीमा भी।[1] नागपुर आकाशवाणी के पूर्व केन्द्र निदेशक डॉ. महावीर सिंह का मानना था कि भाषा पढ़ने की अपेक्षा बोलने से अधिक व्यापक और जीवंत बनती है। यही कारण है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक बोलियां, उपभाषाएं केवल बोले जाने के कारण जीवित हैं। संस्कृत भाषा का लिखित साहित्य अत्यंत सशक्त था लेकिन बोलचाल के स्तर पर इस भाषा का प्रचार-प्रसार न होने से लोक स्वीकृति से वंचित हो गई। हिन्दी भाषा का भी यह हश्र न हो इसलिए हमें इसके लिए बोलचाल के स्वरूप को भी सार्थक बनाना होगा। इसके लिए प्रचलित मुहावरों, कहावतों, स्थानीय व्यंग्योक्तियों आदि का खुलकर प्रयोग आवश्यक है। आगे चलकर यही बोलचाल की भाषा लिखित भाषा साहित्य का रूप ग्रहण कर लेती है।

अतः सभी प्रसारण-विशेषज्ञ इस सम्बन्ध में एकमत हैं कि व्यापक जन समुदाय तक संदेश पहुँचने के लिए प्रसारण की भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसे श्रोतावर्ग आसानी से समझ सके। यदि भाषा सरल होगी तो उसे सामान्य तथा विद्वान, निरक्षर तथा साक्षर और बच्चे व बड़े समान रूप से समझ लेंगे। दूसरे, प्रसारित संदेश मुद्रित

1. प्रसार माध्यम और हिन्दी - डॉ. महावीर सिंह राष्ट्रभाषा संदेश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

सामग्री की भांति ही होता है जिसका कोई अंश समझ न आने पर आप पिछले पृष्ठ को पलटकर संदर्भ जोड़ सकते हैं अथवा कठिन शब्द का अर्थ जानने के लिए शब्दकोश के पृष्ठ पलट सकते हैं। एक बार जो वाक्य, उक्ति अथवा शब्द प्रसारित हो गया वह हवा के झोंके की भांति आगे निकल जाता है। इसलिए सफल प्रसारण की बुनियादी आवश्यकता है, भाषा की सरलता। रेडियो कार्यक्रमों में भाषा को सरल और सुबोध बनाना वास्तव में निरंतर चलती रहने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ लोगों में साक्षरता बढ़ी है जिससे उनके भाषाज्ञान का स्तर भी ऊँचा उठा है। उसी के अनुरूप आकाशवाणी में कार्यक्रमों की भाषा में भी परिष्कार हुआ है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अन्य विदेशी और भारतीय भाषाओं विशेषकर अंग्रेजी, फारसी, अरबी तथा उर्दू के शब्दों का प्रयोग बन्द कर दिया गया है। वस्तुतः आकाशवाणी सब प्रकार के आग्रहों और विवादों से मुक्त रहकर अन्य भाषाओं के उन शब्दों का सहज और स्वाभाविक ढंग से प्रयोग करने में विश्वास रखता है जो लोगों द्वारा अपना लिए गए हैं। उदाहरण के लिए हम देखेंगे कि आकाशवाणी ने प्रोत्साहन/बढ़ावा, कष्ट/तकलीफ, निःशुल्क/मुफ्त, प्रवेश/दाखिला, अधिक/ज्यादा, परिश्रम/मेहनत, विशेष/खास, भाग लिया/हिस्सा लिया, उपस्थित/हाजिर, उत्तर/जवाब, प्रयास/कोशिश, प्रसन्नता/खुशी जैसे पर्यायों के प्रयोग को अपना लिया है। कसौटी यही है कि शब्द प्रचलित होना चाहिए। अच्छे प्रसारक से यह अपेक्षित है कि उसे इस बात का ज्ञान हो कि कौन से शब्द सामान्य व्यक्ति द्वारा समझे जा सकते हैं। यही कारण है कि आकाशवाणी के प्रसारणों में किन्तु, अपितु, एवं, अन्यथा, यद्यपि, यदि, तथापि, की बजाए लेकिन, बल्कि, और, नहीं तो, हालांकि, अगर, तो भी आदि का प्रयोग अधिक होता है। इसी प्रकार 'उपरांत, पश्चात्, पूर्व, सम्मुख, पुनः के स्थान पर क्रमशः बाद, पहले, सामने, फिर शब्दों के प्रयोग को बेहतर माना जाता है। शब्दों का चयन करते समय यह भी ध्यान में रखा जाता है कि इन्हें बोलने के लिए वाणी को प्राणायाम न करना पड़े। उदाहरण के लिए 'एक कोटि

श्रमिकों द्वारा निरंतर दो दिवस तक प्रदर्शन किया गया' के स्थान पर 'एक करोड़ मजदूरों ने लगातार दो दिन प्रदर्शन किया' बोला जाना अधिक सरल है। इसी प्रकार 'उन्होंने इस बात पर अफसोस जाहिर किया कि मुल्क की तरक्की रुक गई है' को यों बोलना ज्यादा आसान होगा - 'उन्होंने इस बात पर अफसोस प्रकट किया कि देश की प्रगति रुक गई है।' यहाँ यह विश्लेषण करना कोई महत्व नहीं रखता कि इन वाक्यों में संस्कृत के शब्द अधिक हैं या फारसी, अरबी के। उद्देश्य तो है जन-साधारण को समझाना।

अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के बारे में भी कसौटी वही है कि अधिक से अधिक लोग समझ सकें तथा भाषा की आत्मा भी नष्ट न हो। टेलीफोन, इंजीनियर, डॉक्टर, मशीन, कम्प्यूटर, रेलवे स्टेशन, एजेंसी, फ्रिज, मैच, गोल, कम्पनी, टैक्नोलोजी, कांस्टेबल, फोटोग्राफर, बजट, कर्फ्यू, इंजन आदि अनेक ऐसे शब्द हैं जिनके प्रयोग से आकाशवाणी को कोई परहेज नहीं है। ये शब्द हमें आकाशवाणी पर अक्सर सुनाई दे जाते हैं। ये शब्द बोलचाल में हिन्दी के अपने शब्द बन चुके हैं। भाषा के प्रचलित रूप के प्रयोग पर बल देने का ही परिणाम है कि आकाशवाणी में कभी-कभी एक ही अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए उनके हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों पर्यायों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए थाना और पुलिस स्टेशन, स्कूल तथा विद्यालय, कॉलेज और महाविद्यालय, प्रेस और समाचार पत्र, बिल और विधेयक, समिति और कमेटी, ग्रुप और गुट, पास और पारित, कारखाना और मिल, दल और पार्टी, अफसर और अधिकारी, सीट और स्थान, इकाई और यूनिट शब्दों का प्रयोग बिना झिझक किया जाता है। ये शब्द सामान्य हिन्दी भाषी व्यक्ति के लिए आम बन चुके हैं। प्रसारण से जुड़े व्यक्तियों को यह देखना होता है कि कौन-सा शब्द या शैली उन लोगों की समझ में आती है, जिनके लिए समाचार या अन्य कार्यक्रम प्रसारित किए जा रहे हैं। मौखिक माध्यम होने के कारण आकाशवाणी में अभिव्यक्ति की एक मांग यह भी है कि शब्द और वाक्य में ऐसे प्रयोग किए जाएं जिन्हें बोलने में सुविधा हो। उच्छृंखल,

स्खलन, प्रच्छन्न, अप्रत्याशित, पारस्परिक, पतोनोन्मुख, वितृष्णा, संलग्नता, अन्योन्याश्रित, मुकर्रर इत्यादि असंख्य शब्द हैं जो भाषा को प्रभावशाली तथा अधिक अर्थवान् बनाने की क्षमता रखने के साथ-साथ कर्णप्रिय भी हो सकते हैं किन्तु इनके उच्चारण में कठिनाई हो सकती है और कई बार वाचक गलत पढ़कर अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं। दूसरे, कठिन शब्दों का उच्चारण करते हुए वाचक को कई बार रुकना भी पड़ जाता है, जिससे कार्यक्रम के प्रवाह और रोचकता में कमी आ जाती है तथा श्रोता का तारतम्य भंग हो जाता है। यह भी देखा गया है कि कर्मवाच्य (पैसिव वॉयस) में वाक्य जटिलता लाने वाले होते हैं। अतः प्रसारण में कर्तृवाच्य (एक्टिव वॉयस) में वाक्य बनाना उचित रहता है। जैसे अमृतसर में आतंकवादियों द्वारा चलाई गई गोली से 10 व्यक्तियों की मृत्यु हुई तथा 28 लोग घायल हो गए।' वाक्य को सीधा बनाकर इस प्रकार लिखा जा सकता है, 'अमृतसर में आतंकवादियों ने गोली चलाकर 10 व्यक्तियों को मार डाला और 28 को घायल कर दिया।'

आकाशवाणी का विषय संसार बहुत व्यापक है। जो कार्यक्रम विशिष्ट तथा शिक्षित वर्गों के लिए हैं उनमें साहित्यिक अथवा तकनीकी शब्द-युक्त भाषा का प्रयोग किया जा सकता है। संगीत के पाठ के प्रसारण में संगीत से सम्बन्धित शब्दावली का प्रयोग किया जाएगा जो सामान्य श्रोता शायद न समझ पाए। साहित्यिक या आध्यात्मिक गोष्ठी में यदि उच्च स्तर की भाषा का प्रयोग किया जाए तो उसमें कोई दोष नहीं कारण कि ऐसे कार्यक्रम विशिष्ट वर्ग के लिए अभिप्रेत होते हैं। इसी प्रकार टेक्नोलोजी, विज्ञान, चिकित्सा, इन्जीनियरी, एकाउंटेंसी आदि ऐसे अनेक विशिष्ट विषय हैं, जिनमें सम्बन्धित शब्दावली का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। इन विषयों के प्रतिपादन में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग होना अनिवार्य है क्योंकि यदि इनके हिन्दी पर्याय प्रयुक्त करें तो शायद श्रोताओं के पल्ले कुछ भी नहीं पड़े। इसका एक उपाय यह है कि हिन्दी पर्याय के साथ कभी-कभी प्रचलित अंग्रेजी शब्द भी दे दिया जाए। किन्तु ऐसा बारम्बार किया जाएगा तो कार्यक्रम के प्रवाह और प्रभाव में कमी आ सकती है।

अतः बाई पास सर्जरी, 'टिटनेस', 'माइक्रोवेव', 'अल्ट्रा वायलेट', 'ट्रांसमीटर' जैसे तकनीकी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करने से कोई परहेज नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार रेडियो नाटकों में भाषा कुछ साहित्यिक तथा लाक्षणिक हो सकती है। जब किसी वैज्ञानिक, डॉक्टर या आधुनिक विषयों के विशेषज्ञों से भेंटवार्ताएं प्रसारित की जाती हैं तो प्रायः वे तकनीकी शब्दों का प्रयोग करते हैं जो अंग्रेजी में होते हैं कारण कि उनकी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी में हुई होती है। ऐसी स्थिति से बच पाना भी फिलहाल सम्भव नहीं है।

हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के समाचारों के सन्दर्भ में बहुत बड़ी विडम्बना यह है कि समाचार सामग्री मुख्यतः अंग्रेजी में उपलब्ध होती है। इस सामग्री का अनुवाद और सम्पादन एक साथ करके बुलेटिन तैयार किए जाते हैं। हिन्दी के देश की राजभाषा और सम्पर्क-भाषा तथा अनेक प्रान्तों की क्षेत्रीय भाषा होने के कारण हिन्दी और अंग्रेजी के राष्ट्रीय बुलेटिनों की संख्या लगभग बराबर है। सम्पादकों को अंग्रेजी में प्राप्त सामग्री के आधार पर हिन्दी समाचार तैयार करके अंग्रेजी बुलेटिन से पहले हिन्दी बुलेटिन प्रसारित करने होते हैं। यह काम इतनी जल्दी में होता है कि भाषा को सजाने संवारने पर ध्यान देने की अधिक गुंजाइश नहीं रहती। अनुदित होने के कारण हिन्दी बुलेटिन की भाषा में सहज प्रवाह का अभाव स्वाभाविक है। आजादी से पहले भी अंग्रेजी से हिन्दुस्तानी में अनुवाद किए जाने पर भाषा के प्रवाह एवम् सहजता और विषय के साथ न्याय किए जाने पर प्रश्न-चिन्ह लगाए जाते रहे हैं। रेडियो समाचारों के अनुवाद को सरल, सुबोध और प्रवाहमय बनाने के उद्देश्य से 1940 में श्री बुखारी ने समाचारों में मुख्यतः प्रयुक्त किए जाने वाले 8000 शब्दों का हिन्दुस्तानी शब्दकोश तैयार कराया। किन्तु श्री बुखारी पर यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने अपनी पसंद की भाषा (हिन्दुस्तानी) विकसित करने के लिए हिन्दी के साथ भेदभाव किया।

अनुवाद को सरल और सुबोध बनाने के प्रयास स्वतंत्रता के बाद भी जारी रहे।

इस प्रक्रिया के अन्तर्गत आकाशवाणी शब्दकोश प्रकाशित हुआ। इस 432 पृष्ठों वाले शब्दकोश में अनेक अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय संकलित किए गए। शब्दकोशों की अपनी महत्ता है, किन्तु समाचारों की भाषा को सहज और प्रवाहमय बनाने में इनकी अपनी सीमाएं हैं। तत्काल ऐसा अनुवाद करना पड़ता है जिसमें मूल तथ्य का सही अर्थ भी प्रकट हो और सामान्य से सामान्य व्यक्ति की समझ में भी आ जाए। कई बार ऐसे वाक्यांश, शब्द अथवा कथन अंग्रेजी में प्रयुक्त होते हैं जिनका अनुवाद केवल भाषा-ज्ञान से नहीं अपितु विवेक, प्रतिभा तथा बुद्धिकौशल से ही सम्भव है।

स्वतंत्रता के पश्चात हिन्दी के असंख्य शब्द जो पहले कभी अपरिचित और क्लिष्ट रहे होंगे, आज प्रचलित होने के कारण आम जनता भी समझ लेती है। यह शब्दों के बार-बार प्रयोग होने के कारण सम्भव हुआ है। आकाशवाणी से 'आंखों देखा हाल' के प्रसारण में अनुवाद नहीं बल्कि वक्ता का भाषाज्ञान, विवेक, प्रतिभा सभी मिलकर प्रभावोत्पादक होते हैं। क्रिकेट और अन्य खेलों के सीधे प्रसारण में उद्घोषक को न केवल सम्बन्धित खेल की जानकारी होनी चाहिए बल्कि तत्सम्बन्धी तकनीकी शब्दों का भी पर्याप्त ज्ञान होना आवश्यक है। इसके अलावा वक्ता की आवाज की स्पष्टता भी महत्वपूर्ण है। 1962 में पं. जवाहरलाल नेहरू की शव-यात्रा का आंखो देखा हाल जब अंग्रेजी और हिन्दी दोनों में साथ-साथ प्रसारित हुआ तब जसदेव सिंह द्वारा की गई हिन्दी में कमेंटरी इतनी सजीव, भावनापूर्ण और अभिव्यंजनापूर्ण थी कि हिन्दी के श्रोता वर्ग के सामने सम्पूर्ण दृश्य चित्रित हो उठा था। सारा राष्ट्र एक ही भावना की डोर से बंध गया था। यह कमेंटेटर के बुद्धिकौशल, प्रतिभा और कम्पनाशीलता के कारण सम्भव हो सका था। ऐसें समय में जब देश में दूरदर्शन का विस्तार नहीं के बराबर था, शब्दों के मोतियों से देशवासियों के हृदयों को एक माला में पिरो देना आकाशवाणी के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि थी। आज आकाशवाणी और दूरदर्शन में समाचारों के थोड़े-थोड़े अन्तराल पर प्रसारण होने के कारण अनुवाद पर कम और मूल समाचार हिन्दी में तुरन्त तैयार किए जाने पर ज्यादा

जोर है। इसका श्रेय 'भाषा' 'युनीवार्ता' जैसी हिन्दी की समाचार एजेंसियों को जाता है।

2. हिन्दी के प्रसार में दूरदर्शन की भूमिका

दूरदर्शन दूरसंचार का बहुत ही प्रभावशाली माध्यम है। ध्वनि के साथ-साथ चित्रों को प्रस्तुत करके इस माध्यम द्वारा मानव व्यक्तित्व को भी प्रस्तुत किया जाता है और इस प्रकार इसका जनता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। चूँकि इसकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती, इसलिए इसे सर्वभौमिक माध्यम भी कहा जाता है। टेलीवीज़न को इडियट बॉक्स कहा जाता है कारण कि जो इसके सामने बैठ गया आसानी से उठ नहीं पाता। दूरदर्शन के अलावा अन्य विभिन्न चैनलों के आने से टेलीवीजन के कार्यक्रमों के स्तर में काफी सुधार आया है, साथ ही तकनीकी गुणवत्ता भी बढ़ी है। विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय चैनलों ने देश में हिन्दी के महत्व को समझा है जिसके फलस्वरूप स्टार प्लस, सोनी, जी टी.वी. ने भी हिन्दी भाषी दर्शकों के बीच अपनी पैठ जमाने के लिए अपने 'प्राईम टाईम' में हिन्दी कार्यक्रमों को प्रमुखता दी है। दूरदर्शन की देश में सर्वाधिक पहुँच से हिन्दी को भी काफी लाभ हुआ है और हिन्दी का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है। अभी तक हिन्दी फिल्मों को अधिकाधिक जनता तक पहुँचाने का श्रेय प्राप्त था किन्तु टेलीविजन के प्रसार के बाद उसने देश की 90 प्रतिशत जनसंख्या को अपने प्रसारण के क्षेत्र में ले लिया है। देश में आज लगभग 70 लाख[1] से ज्यादा टी.वी. सेट लगे हुए हैं औरदेश का कोई भी क्षेत्र इसके प्रसारण की आवृत्ति से बाहर नहीं है। स्वाभाविक है कि दूरदर्शन के बढ़ते विस्तार से फिल्म उद्योग के अस्तित्व को खतरा होना था। हालांकि यह भी सत्य है कि दूरदर्शन के अधिकांश लोकप्रिय कार्यक्रम फिल्मों पर आधारित होते हैं। इन कार्यक्रमों के अलावा टेलीविजन पर चौबीसों घण्टे चलने वाले हिन्दी फिल्मों के गाने वाले कार्यक्रमों तथा धारावाहिकों आदि ने भी दूरदर्शन को लोकप्रियता प्रदान की है।

भारत में दूरदर्शन का प्रारम्भ 15 सितम्बर 1959 को नई दिल्ली केन्द्र से हुआ।

सन् 1960 में गणतंत्र दिवस समारोह को दूरदर्शन पर सीधे प्रसारित करने का सफल प्रयास किया गया। अक्टूबर 1961 मे विद्यालयों के लिए शैक्षिक प्रसारण प्रारम्भ किया गया। इस शिक्षात्मक योजना के तहत हिन्दी, अंग्रेजी, समाजशास्त्र, भौतिक शास्त्र, भूगोल आदि विषयों के अध्यायों का प्रसारण दूरदर्शन पर किया जाने लगा। 1 जनवरी 1976 से दूरदर्शन पर व्यापारिक सेवा शुरु कर दी गई। अब दूरदर्शन पर स्पॉट तथा प्रायोजित कार्यक्रमों के विज्ञापनप्रसारित किये जाने लगे थे। फिल्म आधारित कार्यक्रमों जैसे चित्रहार, चित्रमाला, फूल खिले हैं गुलशन गुलशन आदि ने अब तक लोकप्रियता प्राप्त करनी शुरु कर दी थी। 15 अगस्त 1982 से भारतीय दूरदर्शन पर विधिवत् रूप से रंगीन प्रसारण शुरु कर दिया गया। 19 नवम्बर 1982 से दिल्ली में एशियाई खेलों का आयोजन किया गया। इन खेलों का सफल प्रसारण कर दूरदर्शन ने काफी प्रतिष्ठा अर्जित की। यह कार्य ऐतिहासिक था। इससे भारतीय दूरदर्शन का चरित्र ही बदल गया। कल तक जो टी.वी. विलास की वस्तु समझा जाता था, देखते ही देखते मध्यमवर्गीय शहरी लोगों की घरों की जरूरत बन गया।

दूरदर्शन के विस्तार ने विज्ञापन की एक नई संस्कृति को जन्म दिया। व्यावसायिक हितों ने भी इस माध्यम का महत्व समझ लिया था और वे उन्हीं कार्यक्रमों में विज्ञापन देते थे जिन्हें अधिकाधिक लोग पसन्द करें। निश्चित रूप से फिल्मों व चित्रहार के मुकाबले दूरदर्शन के अन्य विकासात्मक कार्यक्रम अधिक लोकप्रिय नहीं थे। ऐसे में जनसंस्कृति के लोकप्रियतावादी तर्क के आधार पर फिल्मों और चित्रहारों ने विज्ञापन का दूरदर्शन में हस्तक्षेप सुनिश्चित कर दिया। धीरे-धीरे अन्य प्रायोजित कार्यक्रम भी शुरू हुए। 'हम लोग' जैसे सोप ओपेरा के प्रसारण के साथ ही प्रायोजित धारावाहिकों का आगमन हुआ। धीरे-धीरे विज्ञापन टी.वी. का स्थायी अंग बन गए। यहाँ तक कि राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय स्तर के खेलों का प्रसारण भी प्रायोजित किया जाने लगा। सेटेलाइट चैनलों के आने से प्रायोजकों व विज्ञापकों की टी.वी. के कार्यक्रमों

1. ब्राडकास्टिंग इन इण्डिया/पी.सी. चटर्जी/पृ.56-57

में घुसपैठ इतनी बढ़ गई कि विभिन्न उत्पादों के विज्ञापनों में भी प्रति स्पर्धी संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रतिस्पर्धा ने नव-धनाढ्य वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करते हुए उपभोक्तावाद को जन्म दिया। आज हर टी.वी. दर्शक दर्शाए गए विज्ञापनों से प्रभावित होकर उन्हें प्राप्त करने की चेष्टा मन में लिए रहता है। इस उपभोक्तावाद संस्कृति से जनमानस कितना प्रभावित हुआ है यह विवादास्पद चर्चा का विषय हो सकता है किन्तु एक बात हिन्दी के हित में निश्चित हुई है कि विज्ञापनों ने अधिकाधिक दर्शकों तक पहुँचने के लिए हिन्दी को माध्यम के रूप में अपनाते हुए परोक्ष रूप में हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार देश के कोने-कोने में कर दिया है। जो कसर हिन्दी फिल्मों में छोड़ दी थी वह टी.वी. के विज्ञापनों ने पूरी कर दी है। राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार का जो कार्य सरकारी आदेश-अनुदेश नहीं कर पा रहे हैं, वह कार्य टी.वी. के प्रायोजित कार्यक्रमों द्वारा किया जा रहा है। फिल्मों पर आधारित कार्यक्रमों के अलावा अन्य कार्यक्रम जैसे समाचार, परिचर्चा, प्रश्नोत्तरी, साक्षात्कार आदि भी आज प्रायोजित होते हैं। प्रायोजित धारावाहिकों की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं। 'रामायण', 'महाभारत', 'श्रीकृष्ण', 'चाणक्य' जैसे प्रायोजित धारावाहिकों ने न केवल हिन्दी का बल्कि साहित्यिक, संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रसार जन-जन के बीच किया है जिसके लिए हिन्दी जगत दूरदर्शन का सदैव ऋणी रहेगा।

जहाँ तक दूरदर्शन में प्रयुक्त हिन्दी की शैली का प्रश्न है, दूरदर्शन के विविध कार्यक्रमों के अनुसार उनकी भाषा शैली भी भिन्न-भिन्न होती है। यह विविधता इसलिए होती है कि अलग-अलग कार्यक्रम अलग-अलग दर्शक-वर्ग के लिए प्रसारित किए जाते हैं। इन कार्यक्रमों में समाचार, फिल्म आधारित कार्यक्रम, संगीत, सीरियल, खेल-प्रसारण, परिचर्चा, भेंटवार्ताएं आदि सम्मिलित हैं। हमने पूर्व में बताया कि आकाशवाणी के प्रसारण की भाषा सरल और सुबोध होनी चाहिए कारण कि उसके श्रोताओं में अपढ़ और पढ़े-लिखे, छोटे और बड़े सभी प्रकार के श्रोता होते हैं। जहाँ तक दूरदर्शन की भाषा का प्रश्न है, दृश्य माध्यम होने के कारण इसमें भाषा और भी

MEHTA LIBRARY University of Baroda

सरल व सुबोध बनाने की आवश्यकता होती है। वाक्य बहुत छोटे-छोटे होने चाहिए। दर्शक का आधा ध्यान शब्दों पर और आधा दृश्य पर होता है। यदि भाषा दुरुह या जटिल होगी तो वह सही अर्थ या प्रभाव ग्रहण करने से चूक जाएगा। यह भी माना जाता है कि टेलीवीजन के दर्शक अधिकांशतः शिक्षित वर्ग के होते हैं, अतः इसमें अंग्रेजी शब्दों को ज्यों का त्यों ले लेने में विशेष संकोच नहीं किया जाता। जैसे कि हम देखते हैं कि खेलों का प्रसारण करते समय खेलों की शब्दावली यथावत् इस्तेमाल की जाती है। बैट्समैन, विकेटकीपर, बॉल, कोर्ट, टेनिस, गली, रन आउट, अम्पायर, अपील, बाउण्ड्री, बाउंसर, नो बॉल, वॉयड बॉल आदि शब्दावली का हिन्दी प्रसारण में ज्यों का त्यों प्रयोग किए जाने की छूट है। इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दी की अपनी अलग प्रकृति है और वह अन्य भाषाओं के शब्दों को आत्मसात करके विकसित हो रही है। दूरदर्शन के हिन्दी सीरीयलों और फिल्मों की लोकप्रियता इस बात का प्रमाण है कि उच्चरित रूप में हिन्दी ने अपना निश्चित स्वरूप बना लिया है। आकाशवाणी की भाषा के सम्बन्ध में कही गई शेष सभी बातें दूरदर्शन की भाषा के बारे में भी सही है। उन्हें दोहराने की यहाँ आवश्यकता नहीं। फर्क इतना है कि आकाशवाणी में जहाँ छोटी-सी-छोटी घटना का ब्यौरा दिए जाने की आवश्यकता होती है और शब्दों के अधिकाधिक प्रयोग से घटना को सजीव करने का प्रयास किया जाता है जबकि दूरदर्शन में दृश्य के साथ-साथ समाचार दिए जाते हैं और लम्बा ब्यौरा देने से बचा जा सकता है। इसी प्रकार रेडियो नाटकों या धारावाहिकों में पात्रों को अपने भाव व्यक्त करने के लिए शब्दों का सहारा लेना पड़ता है अथवा नेपथ्य में भावानुकूल संगीत से प्रभाव पैदा किया जाता है। दूरदर्शन के धारावाहिकों या नाटकों में इस प्रकार कोई मजबूरी नहीं होती। उल्टे चेहरे के भावों और वातावरण के दृश्यांकन से अनुकूल प्रभाव पैदा कर अनावश्यक शब्दों के प्रयोग से बचा जा सकता है। दूरदर्शन समाचार भी इसी कारण से दिलचस्प होते हैं कि उनमें घटनाक्रम का दृश्यांकन कर देने से दर्शक अपने आपको घटनास्थल पर मौजूद महसूस करता है। हाल ही में

लोकसभा की कार्यवाही के सीधे प्रसारण से सरकार और जनता के बीच पारदर्शिता का विकास हुआ है। जनता अपने प्रतिनिधियों के व्यवहार और बहस को अपनी आंखों से देख पाती है जो आकाशवाणी के सीधे प्रसारण से सम्भव नहीं हो पाता। भेंट वार्ताओं में जनता को जनता की भाषा में नेताओं-अभिनेताओं, विशिष्ट व्यक्तियों आदि के विचार जानने-समझने का अवसर मिल जाता है। यद्यपि फिल्म आधारित साक्षात्कारों, वार्ताओं, काउण्ट डाउन शो आदि में भाषा की शुद्धता पर ध्यान नहीं दिया जाता और खिचड़ी भाषा का प्रयोग किया जाता है किन्तु हम विश्लेषण करेंगे तो यही पाएंगे कि इस प्रकार के कार्यक्रमों से ज्यादा जनता के बीच वे कार्यक्रम लोकप्रिय हैं जहाँ आम जनता की भाषा का प्रयोग किया जाता है और जिनमें अच्छी हिन्दी का प्रयोग अधिक होता है जैसे रामायण, महाभारत, श्रीकृष्ण, चाणक्य, जय हनुमान, हम लोग, बुनियाद, चन्द्रकांता, झांसी की रानी, शक्तिमान, इत्यादि धारावाहिक। आज तक, आंखों देखी , आज की बात आदि समाचार आधारित कार्यक्रम (वस्तुतः आंखों देखी में नलिनी सिंह और आज तक में सुरेन्द्र प्रताप सिंह ने अंग्रेजी समाचारों की लोकप्रियता के एकाधिकार को लगभग समाप्त कर दिया है); सुरभि (सांसकृतिक कार्यक्रम), आप की अदालत, जनता की अदालत; आवाज (खुला साक्षात्कार), व्योमकेश बक्सी, करमचन्द, सी.आई.डी, सबूत, मोहनदास बी.ए. (अन्वेषणात्मक धारावाहिक), सा रे गा मा, मेरी आवाज सुनो, अन्ताक्षरी (सुगम संगीत कार्यक्रम) आदि। इनके अलावा समसामयिकी कार्यक्रमों में भी हिन्दी का स्तरीय प्रयोग किया जाता है। जी इण्डिया टी.वी. से तो आधे-आधे घण्टे बाद हिन्दी समाचारों का प्रसारण प्रातः 7:00 बजे से रात 10:00 बजे तक चलता रहता है। इसी प्रकार दूरदर्शन और स्टार प्लस से प्रसारित होने वाले हिन्दी समाचारों से भी पता लगता है कि अंग्रेजी समाचारों की तुलना में उनकी गुणवत्ता और विश्वसनीयता कहीं कम नहीं है। पहले हिन्दी समाचार अंग्रेजी में मूलरूप से तैयार होने वाले समाचारों का अनुवाद हुआ करते थे। लेकिन आज स्थिति बदल गई है। घटना के तुरन्त बाद हिन्दी समाचारों का

प्रसारण इस बात का द्योतक है कि उन्हें मूल रूप में तैयार किया जाता है। स्टार प्लस और जी इण्डिया टी.वी. चैनल तो तकनीकी रूप से इतने विकसित हो चुके हैं कि अंग्रेजी में बोले गए वक्तव्यों का तत्काल अनुवाद हिन्दी में साथ-साथ प्रसारित किया जाता है अथवा अंग्रेजी वक्तव्यों का हिन्दी अनुवाद स्क्रीन के निचले हिस्से पर दिखा दिया जाता है। अन्तरराष्ट्रीय समाचारों के तुरन्त हिन्दी अनुवाद की सुविधा इन चैनलों के न्यूज़रूम में उपलब्ध है। डिस्कवरी चैनल का हिन्दी प्रसारण आज सर्वाधिक लोकप्रिय कार्यक्रम में से एक है। उसके दर्शकों में हिन्दी प्रसारण का विकल्प देखने वालों की संख्या अधिक है। इस चैनल के कारण अन्तरराष्ट्रीयमंच पर होने वाले अद्यतन आविष्कार, खोज, साहसिक व रोमांचक कार्य हमारी अपनी भाषा में उपलब्ध हैं और हम भी उस रहस्य और रोमांच का अनुभव अंग्रेजी भाषा के दर्शकों के समान प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय दूरदर्शन के अलावा अन्तरराष्ट्रीय चैनलों का भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में आज दूरदर्शन माध्यम की भूमिका अन्य माध्यमों की अपेक्षा कहीं अधिक स्थापित हो चुकी है।